रु॰ 25.00

अंक 21

अक्तूबर 2002 - दिसम्बर 2003

चन्द्रताल

लाहुल-स्पीति की साहित्यिक-सांस्कृतिक त्रैमासिक

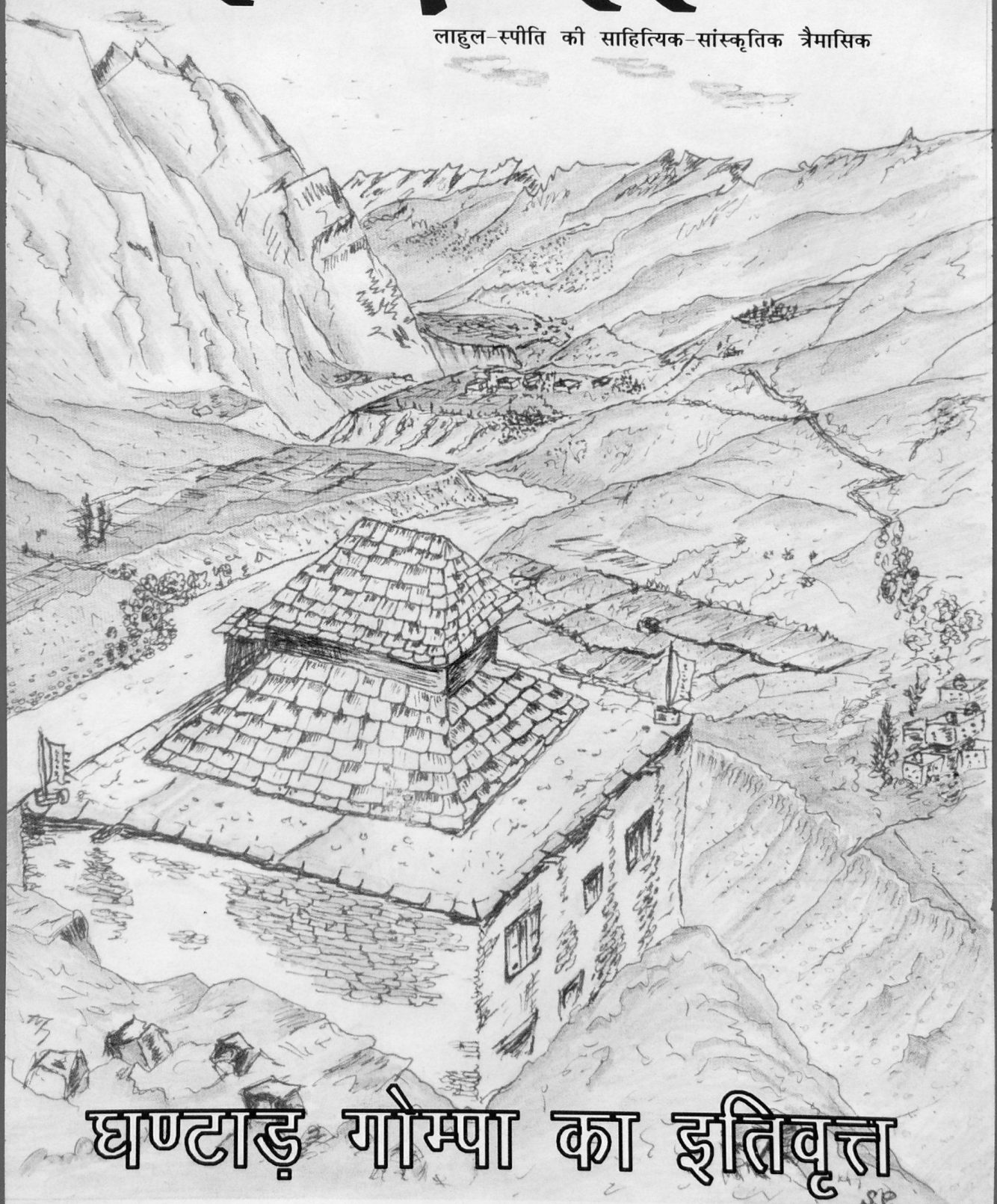

घण्टाड़ गोम्पा का इतिवृत्त

भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के अन्तर्गत संख्या 65373/94 द्वारा पंजीकृत

संस्थापक
स्वंगला एरतोग,
लाहुल-स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु
सोसाईटी (रजि०) संख्या ल स/42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860.

संपादक
सुश्री डॉ० छिमे शाशनी

उप संपादक
बलदेव कृष्ण घरसंगी

संपादकीय सलाहकार
बिशन दास परशीरा
अजेय कुमार

सम्पर्क:
संपादक - चन्द्रताल
पोस्ट बॉक्स 25, मुख्य डाकघर ढालपुर
कुल्लू-175101 (हि०प्र०) फोन: (01902)-260348

अधिकृत एजेंट :

केलंग
श्री राम लाल, राम लाल की हट्टी
(शिव मन्दिर के पीछे), अप्पर केलंग, लाहुल-स्पीति

उदयपुर
श्री शिव लाल, शिवा जनरल स्टोर,
निकट मृकुला देवी मन्दिर, उदयपुर, लाहुल-स्पीति

चन्द्रताल त्रैमासिक सहयोग राशि:
वार्षिक : एक सौ रुपये
एक प्रति: पच्चीस रुपये

पत्रिका पूर्णत: अव्यावसायिक तथा संपादन व प्रबन्धन अवैतनिक है।

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा, नमन, अ०बा० कुल्लू से टाईप सैटिंग तथा मुद्रित एवं नीरामाटी, कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

मुख पृष्ठ रेखा चित्र : डॉ० शिव प्रकाश भुतुंगरू
अन्य रेखा चित्र : अजेय एवं सुदर्शन

क्रम

संपादकीय		2
पाठकीय		3
कविता		4
आंख	*सुरेश कुमार राना*	4
दास्तां	*शकुन*	4
पहचान	*सिद्धार्थ*	4
वह ज़माना आएगा	*स्व. हव. पामा राम*	5
मां	*रीना रंगबा*	5
कसौटी		6
संयुक्त परिवार का न्याय	*सतीश कुमार लोप्पा*	
लोक गाथा		7
घण्टार गोम्पा का इतिवृत्त	*के. अंगरूप लाहुली*	
क्षेत्रीय दृष्टि		
शकोग् बनाम म्हरपिणि	*सतीश कुमार लोप्पा*	13
कहानी		
दर्द का पहाड़	*डॉ० दयानन्द गौतम*	14
जीवनी		
मिलारेपा की जीवनी	*अनू. ठिन्ले नम्ज्ञाल एवं अजेय*	16
यात्रा		
कुल्लू से करगिल	*एन.जी. बौद्ध*	19
देव-परम्पराएं		
कुलूत जनपद में अप्सराओं और नागों का वर्चस्व	*तेज राम नेगी*	27
इतिहास		
लाहुल-स्पीति का इतिहासं	*शिव चन्द ठाकुर*	30
लोक-भाषा		
लाहुली मुहावरे	*विकास*	36
रीति-रिवाज़		
परिवर्तन कितना ज़रूरी	*सुभाष हंस*	38
बागवानी		
लाहुल घाटी में बागवानी के बढ़ते कदम	*सोनम अंगरूप*	39

संपादकीय

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।।

'चन्द्रताल' के प्रकाशन में विलम्ब को लेकर जब मन अवसादग्रस्त हो जाता है और इस धुंधलके में सब कुछ अबूझ लगने लगता है, ऐसी मनःस्थिति में कबीरजी का उपर्युक्त दोहा जहां सांत्वना देता है, वहीं निरन्तर कर्मरत रहने की प्रेरणा भी। इस दोहे में छुपा गूढ़ार्थ 'चन्द्रताल' के प्रकाशन के लिए कितना सही है इसका निर्णय पाठकगण ही करेंगे। हम जानते हैं प्रकाशन में विलम्ब आप लोगों के मन में कई आशंकाएं पैदा कर रहा होगा और आक्रोश भी। नाराज़ होना आपका अधिकार है, क्योंकि आप 'चन्द्रताल' से जुड़े हुए हैं, इससे आप लोगों को कुछ आशाएं भी हैं। लेकिन विडम्बना देखिए, प्रयास करने के बावजूद भी हर बार पत्रिका का प्रकाशन समय पर हो नहीं पाता; विलम्ब की विवशता से आप सब परिचित हैं। हां, इतना आश्वासन आवश्य देते हैं कि मन्थर गति से ही सही, जब तक आप लोग इससे जुड़े हैं, इसकी गति अवरुद्ध नहीं होगी।

यह अंक कुछ ऐसी रचनाओं को लेकर आ रहा है जिनका सम्बन्ध हमारे अतीत से है, संस्कृति से है और है इतिहास से। 'घण्टार गोम्पा का इतिवृत्त' में गुरु घण्टाल की स्थापना का तथ्यपरक परिचय के साथ तत्कालीन सामाजिक स्थिति, शासनतंत्र की दुरभिसंधियों, सिद्धाचार्यो की देवीय शक्ति, लाहुल में बौद्ध धर्म का प्रसार, तंत्रवाद का प्रभाव तथा इस पवित्र स्थली में निहित अलौकिक शक्ति की ओर इंगित किया गया है। स्वार्थ और लोभवृत्ति जहां इन्सान को हैवान बना देता है वहीं कष्ट और दुःख संघर्ष की प्रेरणा के साथ-साथ इन्सान को पहचानने की शक्ति प्रदान करता है, इस सत्य को मिलारेपा की जीवनी के माध्यम से दर्शाया गया है। 'अप्सरा और नागों का वर्चस्व' में अठारह नागों की उत्पत्ति सम्बन्धी मिथक के साथ तत्कालीन सांस्कृतिक क्रिया-कलापों की झलक है।

'लाहुल व स्पीति का इतिहास' में लेखक ने तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक स्थिति, कुछ लेखकों/यात्रियों द्वारा दिए गए तथ्यों और मिथकों के माध्यम से लाहुल-स्पीति के इतिहास को रूपायित किया है। 'लाहुल घाटी में बागवानी के बढ़ते कदम और संभवानाएं' में विभिन्न प्रकार के फलों के उत्पादन की सम्भावनाएं तथा राज्य सरकर की ओर से इस दिशा में दिए जा रहे प्रोत्साहन की जानकारी द्वारा कृषकों का पथ-प्रदर्शन किया गया है। 'कुल्लू से करगिल - पर्यावरण वाहकों की साहसिक यात्रा' में एक ओर यात्रा में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन है तो दूसरी ओर दर्शनीय स्थानों और प्राकृतिक दृश्यों के रोमांचक वर्णन के साथ पर्यावरण सुरक्षा का संदेश भी। 'दर्द का पहाड़' कहानी में नारी शिक्षा की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए नारी व्यथा को उकेरित किया गया है। कविता के अतिरिक्त इस बार पटनी बोली में प्रयुक्त कुछ ऐसे शब्द और मुहावरे / कहावतें दे रहे हैं जो विलुप्ति के कागार पर हैं।

हम हमेशा यह चाहते हैं कि कुछ ऐसा दे पाएं जो उपयोगी और रोचक हो। हमारा यह प्रयास आप लेखकों / पाठकों के सहयोग के द्वारा ही संभव हो सकता है।

सम्पादक

प्रवेशांक से ही चन्द्रताल की भाषा को लेकर कई बातें मेरे मन में खटकती रही। प्रत्यक्षत: इस विषय पर मैं कुछ न लिख पाया। लगा शुरुआती दौर में यह असभ्यता होगी और शायद बड़बोलापन भी। हां, समय-समय पर परोक्ष रूप से अनेक बार इंगित कर दिया गया है कि पत्रिका के लिए एक सहज व जानदार भाषा की तलाश की जानी चाहिए। आज पत्रिका का 20वां अंक सामने आ रहा है। परिपक्वता के इस स्तर पर छोटी-मोटी चोटें सही जा सकती हैं। यह दुस्साहस ही है, लेकिन पत्रिका का अनिवार्य पोषक तत्व भी। उम्मीद है गुस्ताखी माफ कर दी जाएगी।

वैसे माना यह जाता है कि व्याकरण या किसी भी तरह का बंधन भाषा को सहज रूप से विकसित नहीं होने देता। लोक साहित्य के लिए तो यह बिल्कुल अहितकर है। लेकिन जब कुछ शब्द आवश्यकता से अधिक अखरने लगते हैं, कुछ वाक्य बेहद अटपटे बन जाते हैं, कहीं अर्थ का अनर्थ होता दिखाई पड़ता है; तो ज़रूरी हो जाता है कि लेखकों का ध्यान आकर्षित किया जाए।

बेशक ये त्रुटियां असावधानीवश रह गई होंगी। लेखकों ने एक बार लिख लेने के बाद पुन: पढ़कर लेखों में सुधार करने का कष्ट नहीं उठाया होगा। मेरा अपना भी यही हाल है। मशक्कत से घबराता हूं। कई गलतियां छपने के बाद ही पकड़ में आती हैं। यहाँ मैंने कुछ सुझाव भी दिए हैं। कृपया लेखक गण अन्यथा न लें। हो सकता है मैं लेखक का मन्तव्य ठीक से समझ नहीं पाया हूं, अज्ञानता वश गलत अर्थ लगा रहा हूं। आप के पास बेहतर सुझाव हो सकते हैं। कृपया लिखें। चन्द्रताल की भाषा समृद्ध होगी। रोचक एवं दिलचस्प बनेगी।

पुराने अंकों में ख़ैर, जो हुआ सो हुआ। वैसे जिज्ञासू अगर चाहें, उन पर भी एक नज़र डाल सकते हैं। शुरुआत अंक 19 की कविताओं से करते हैं --

1. पृष्ठ 4 कॉलम 1, आतंकवादी : अंशुमाला ठाकुर - 'हम ने रौंदी माँ बाप की अस्मिता'

'अस्मिता' शब्द इस संदर्भ में जच नहीं रहा। कहीं उर्दू शब्द 'असमत' तो नहीं लिखना चाहतीं थीं?

2. पृष्ठ 4 कॉलम 2, सब खत्म है : गणेश गनी - सांझ को पनघट पे कौतूहल नहीं मचता'

कौतूहल का अर्थ है - जिज्ञासा, उत्सुकता। शायद कवि ने 'कोलाहल' लिखना चाहा होगा।

3. पृष्ठ 5 कॉलम 1, ऐ दोस्त तुझे सलाम : देवेन्द्र कुमार शर्मा - (क) 'याद करके उनकी शहीदी', 'शहीदी' शब्द पहली बार सुन रहा हूं। 'शहादत' बेहतर होगा।

(ख) 'रो जाते हैं ... जब तेरी याद आती है'

'रो पड़ते हैं' भी एक विकल्प हो सकता है। सोचिए।

4. पृष्ठ 6, कसौटी : घरसंगी - (क) 'आखिर यह तो होना ही था .... लेकिन इसकी निरंतरता को तो बनाए ही रखना होगा'

'लेकिन इस की निरंतरता बनाए रखनी होगी' से काम चल सकता था। 'ही', 'तो' की पुनरावृत्ति अटपटी है।

(ख) 'नई पीढ़ी की नैतिक, सामाजिक, पारिवारिक मूल्यों में भी बदलाव आया है'

'मूल्य' हिन्दी में पुलिंग है। और चूंकि यहां बहुवचन है, अत: 'के .... मूल्यों' लिखना चाहिए।

(ग) 'इन सब का एक बिन्दु पर एकत्र होना क्या यह संभव है?'

'यह' शब्द फालतू है।

(घ) 'सब स्तर पर सही दिशा में चिन्तन'

'प्रत्येक स्तर पर' कैसा रहेगा? या फिर 'सभी स्तरों पर'?

5. पृष्ठ 16, बहस : शकुन

(क) 'दहेज जैसी कुप्रथा रूपी विषाणु समाज को किस तरह अपना ग्रास बनाता जा रहा है'

ध्यान दें, विषाणु पुलिंग है। हिसाब से 'जैसी' के स्थान पर 'जैसा' होना चाहिए। लेकिन साथ में 'कुप्रथा' (स्त्रीलिंग) की अनावश्यक घुसपैठ ने गड़बड़ी पैदा कर दी है। अब वाक्य को दुरुस्त करना हो तो 'कुप्रथा' या 'विषाणु' में से एक को हटाना होगा - 'दहेज रूपी विषाणु समाज को .... ग्रास बनाता जा रहा है।' या फिर 'दहेज जैसी कुप्रथा समाज को .... ग्रास बनाती जा रही है।'

(ख) 'आज हर माता-पिता अपनी बेटियों को अच्छी तालीम देते हैं', हर शब्द के प्रयोग से 'माता-पिता' एक वचन हो जाते हैं। अत: 'आज माता-पिता अपनी बेटियों को अच्छी तालीम देते हैं।' या

'आज हर माता-पिता अपनी बेटियों को अच्छी तालीम देता है।'

6. पृष्ठ 22, शीर्षक 'प्राचीन भोट साहित्यों...' के. अंगरूप।

(क) 'प्राचीन भोट साहित्यों में शिव-पार्वती की कथा', में 'साहित्य' सही जान पड़ता है। या फिर - 'प्राचीन भोट कथाओं में शिव-पार्वती प्रसंग'।

शेष पृष्ठ 12 पर .....

आँख

भीड़ में सिर्फ एक ऑख ही देख पाया
न जाने क्या देखा उस ऑख ने मुझ में
कि अपनी पलकों पर बिठा दिया,

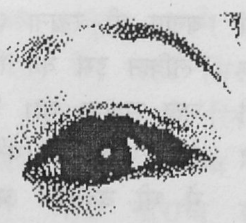

बहुत दिनों तक भूखा-प्यासा
मैं उन पलकों पर रहा

अन्ततः एक दिन मैंने काजल से
उस आँख का पता पूछा

वो बोले, पुतली से होकर सीधे चले जाइये
मैं गया, देखा तो, सोने का एक महल था
दरबान सजे थे, वो दुल्हन का जोड़ा पहने
तैयार खड़ी थी घोड़े पर सवार होकर
आने वाले राजकुमार के इन्तज़ार में
और मेरे जैसे सौ के करीब नौजवॉ
उसके पैरों के तले मरे पड़े थे

मैं डरा, चिल्लाया सोचा यहां क्यों आया
मैं पीछे मुड़ा पलकें झुक गयी
मेरा रास्ता रुक गया

मैंने आवाज़ लगाई, बचाओ-बचाओ-बचाओ
पलकें ऊपर उठीं, काजल बोले
दोस्त कहां जा रहे हो
अगर आना है दोबारा तो मैं तुम्हें
एक सेकंड का समय देता हूं
मेरी बात मानो तो यहां कभी ना आओ

मैं धीरे-धीरे पलकों से नीचे उतरा
और ठीक उसी जगह पर जाकर
पीछे देखने लगा

जहां उस आंख ने पहली बार मुझे देखा था
मुड़कर देखा तो पलकों पर कोई और खड़ा था
पुतली में कोई और था
काजल से कोई और पता पूछ रहा था
और वह आंख दूर किसी और को देख रही थी।

– *सुरेश कुमार राना*

दास्तां

बहार के बाद
पतझड़ आती है
धूप के बाद
छांव होती है
ज़िंदगी भी है
क्या अजब दास्तां
चंद हसीं
लम्हों के बाद
फिर वही उदास
शाम आती है।।

– *शकुन*

पहचान

कल की तन्हाई आज की आदत बन जाए
तो वह हवा बन उड़ जाती है।

फिर समा जाती है हमी में, ज़रूरत बनकर,
निभाया होता है जिसे हमने उम्र भर।

वह जिसे देखा था हमने, बस ऊपर ही से,
और भुला दिया था एक छोटे से क्षण में।

आज देख भाव, मित्रता का मुझमें,
भी दी हृदय में जीवन-भरी सांसें।

और जब आंख खुली तो देखा दर्पण, एक चेहरा,
मेरे जैसा -- जैसा था मैं अपने लिए।

फिर ले आया उसे अपने घर,
जान कर उसे अपना-भर।

–*'सिद्धार्थ'*

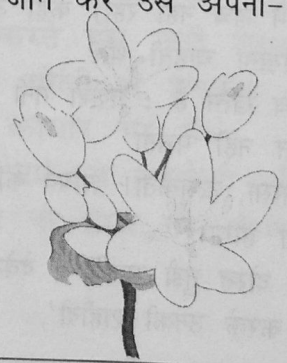

वह ज़माना आएगा

वह ज़माना यकीनन आएगा, वह ज़माना यकीनन आना है।
इन ऊंचे–ऊंचे पहाड़ों ने, ज़र्रे–ज़र्रे बनकर ख़ाक बन जाना है।।

इस वादी के रहने वालों में, अब नाम भी अपना दीवाना है।
राही तेरी मंज़िल आ तो गई है, आखिर कहां तक जाना है।।

हम तर्के ताल्लुक भी कर लें, हम उन से किनारा भी कर लें।
बहर–ए–हाल हम ने उन को, महबूब ही माना है।।

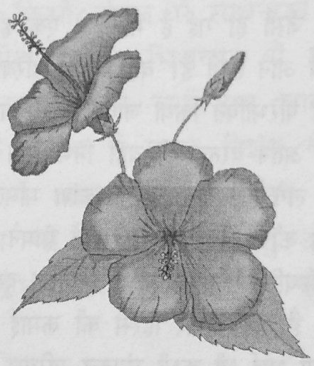

मायूस दिल कि भर आए थे आंख में आंसू।
मगर किसी के लिए हम को मुस्कुराना है।।

जिसे ख़िज़ां से ज़्यादा बहार ने लूटा है।
उसी चमन में हमारा भी आशियाना है।।

मोजे बहारां पर मत जा, तकदीरे ख़िज़ां पर गौर न कर।
जो फूल खिला है आज यहां, कल उसको भी मुरझाना है।।

– *स्व० हव० पामा राम मालपा*

माँ

मेरी ज़िन्दगी, मेरी खुशियां
मेरा प्यार, मेरा अरमान
मेरा तन, मेरा मन
सब कुछ, दिया तुम्हारा

मुझे याद है मेरा बचपन
तेरा हंसाना, तेरा रुलाना
रात-रात जागकर मुझे सुलाना
खुद न खाकर मुझे खिलाना
छोटी सी छोटी बात
अब तक है मुझे याद
साए की तरह वो यादें
हैं मेरे साथ

बीता हुआ हर लम्हा है
मुझे पल-पल याद
तेरा कर्ज़ नहीं चुका सकती
तब तक.....?
हज़ारों जन्म न ले लूं
जब तक.....?

–रीना रंगबा

संयुक्त परिवार का न्याय

जैसा कि सब जानते हैं कि लाहुली समाज पुरुष प्रधान समाज है। अतीत में यहां 'साझा पत्नी प्रथा' व्यापक रूप से प्रचलित थी जो यहां के संयुक्त परिवारों की केन्द्रीय व्यवस्था थी। कालान्तर में धीरे-धीरे इस प्रथा में शिथिलता आती गई और परिवारों की संयुक्तता भी क्षीण होती गई। लेकिन इस शिथिलता के बावजूद आज भी यहां अधिकांशत: संयुक्त परिवार ही हैं। यद्यपि पारिवारिक संयुक्तता के मानदण्ड कुछ रूपान्तिरित ज़रूर हो गए हैं। जहां पहले के परिवारों में पत्नी केन्द्रीय धुरी की तरह होती थी, उसकी स्थिति मधुमक्खियों के छत्ते की रानी की तरह थी और सभी भाई उसके चारों ओर कर्मिष्ठ मधुमक्खियों के सदृश कर्मशील रहते थे। वहां आज के परिवारों में स्थिति अनेक रानियों वाले छत्ते जैसी हो गई है मानो वे एक ही बक्से में अपने-अपने अलग छत्ते बना बैठे हों। इस परिस्थिति में एक अजीब सी समस्या प्राय: परिवारों में आने लगी है। वह है ऐसे परिवारों की आर्थिक संयुक्तता की। सवाल उठता है कि अलग-अलग भाइयों की आर्थिक संयुक्तता को किस तरह परिभाषित किया जाए? स्थिति यह है कि कोई एक भाई घर में खेती-बाड़ी सम्भाल रहा होता है और घर चला रहा होता है। प्राय: सामाजिक अर्तन-बरतन भी वही निभा रहा होता है संयुक्त परिवार के मुखिया की हैसियत से। उसके बाकी एक या एकाधिक भाई सरकारी नौकरी में लगे होते हैं और अधिकांश मामलों में उनके बीवी-बच्चे भी उनके साथ ही मूल गृह से दूर रहते हैं। समस्या तब पैदा होती है जब किसी पक्ष की बड़ी आर्थिक ज़रूरतें सामने आ जाती हैं। जब कोई पक्ष अपना हक मांगने लगता है। तब घर का तथाकथित मुखिया बना भाई मुश्किल स्थिति में आ जाता है क्योंकि दूसरे भाई यह मांग करने लगते हैं कि तुम खेती कर रहे हो, कमा रहे हो, क्योंकि ज़मीनें हम सब की साझी हैं अत: हमारे हिस्से की कमाई हमें दो। ज़ाहिर सी बात है ऐसी स्थिति में वह अपनी असमर्थता जताता है। दूसरी ओर यह खेती करने वाला भाई भी कभी संयुक्त परिवार की दुहाई देता हुआ आर्थिक मदद की मांग करता है तो नौकरी वाला भाई दो टूक जवाब देता है कि भैया यह तो मेरी अपनी कमाई है इसमें से कुछ मांगने का तुम्हें क्या हक? परिणाम, विवाद खड़ा हो जाता है। कौन सही, कौन गलत? अब यदि तटस्थ रहकर गहराई से विचार किया जाए तो कुछ तथ्य सामने आते हैं। पहले खेती करने वाले भाई की स्थिति जांचें -- लाहुल में खेती करना आसान नहीं है, कठोर श्रम करना पड़ता है। इस कार्य में उसके अतिरिक्त उसके बीवी-बच्चे तथा अन्य सदस्य श्रमिकों की तरह ही मेहनत करते हैं। वर्ष में केवल एक ही फसल ली जा सकती है। एकाधिक नकदी फसलों के बावजूद कितना कुछ बचा पाता है? मेरा अनुमान और तजुर्बा तो यही कहता है कि एक औसत लाहुली किसान उतना ही बचा पाता है जितना कि उस परिवार के लोग खेत में श्रम करते हैं क्योंकि परिवार के सदस्य मुखिया से दिहाड़ी नहीं लेते। वही उनकी बचत है। पारिवारिक दायित्वों के अतिरिक्त समाज में भी उसे बरतना पड़ता है, प्राय: सभी के प्रतिनिधि के रूप में। फिर कुछ भौतिक सुख सुविधाएं भी आदमी चाहता है जिन पर खर्चा करना पड़ता है। कठिनाई यह भी है कि कृषि की आय में उतार-चढ़ाव बहुत है। कमाई का ग्राफ हमेशा ढुलमुल रहता है, कभी ऊपर कभी नीचे। दूसरी ओर नौकरी पेशा भाई की स्थिति को देखें -- उसकी आय तय है। समय के साथ-साथ कमाई बढ़ती है लेकिन घटती कभी नहीं। उसे जी तोड़ श्रम नहीं करना पड़ता। भौतिक सुख-सुविधाओं पर भी अपेक्षाकृत उसकी अधिक पहुंच है। मूल गृह की तुलना में सामाजिक अर्तन-बरतन भी कम है। तीन-चार जनों का छोटा सा परिवार है। यदि पत्नी भी नौकरी पेशा है तो कमाई बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में वे पति-पत्नी में से एक की कमाई के अधिकांश भाग को बचाने की स्थिति में होते हैं यदि कोई बड़ा व्यसन न हो। हां, शहरी क्षेत्रों में रहने के कारण पड़ने वाली मंहगाई की मार तो उन पर भी पड़ती ही है। इस तरह विश्लेषण करने के बाद यह तथ्य सामने आता है कि नौकरी पेशा भाई की तुलना में खेती करने वाले भाई के पास धन-संचय के अवसर बहुत कम रह जाते हैं। ऐसे में साझा ज़मीन की दुहाई देकर उसकी कमाई से हिस्सा मांगना न्यायसंगत नहीं लगता। सच यह भी है कि खेत तभी कुछ आय दे सकता है जब उस पर काम किया जाए। परती पड़ा खेत आय का स्रोत नहीं हो सकता। काम करेगा तो कमाएगा, वर्ना सब मिट्टी है। अत: कमाई काम करने वाले की। हां, ज़मीन का टुकड़ा मांगा जा सकता है, मगर फसल का हिस्सा नहीं। कभी-कभी कोई नौकरी पेशा भाई यह तर्क भी पेश करता है कि चलो भाई-भाई की आमदनी को साझा मान भी लें तो नौकरी करने वाली पत्नी की कमाई तो उसकी ही अति-व्यक्तिगत आय है, वह तो परिवार की साझी आय हो ही नहीं सकती। तो क्या खेती करने वाले भाई की पत्नी खेतों में दिन-रात नहीं खटती है? उसके श्रम का कोई मूल्य नहीं? अन्य परिवारजनों के श्रम का कोई मूल्य नहीं? घर की दो बहुओं के श्रम को एक ही धरातल पर रख कर आंका जाना चाहिए। एक का श्रम पूरे घर के लिए है तो दूसरे का श्रम भी होना चाहिए।

इस सारे विश्लेषण से यह बात उभर कर सामने आती है कि भाई चाहे खेती करने वाला हो या नौकरी पेशा, पत्नियां नौकरी करती हों या खेती में जुटी हों सब का श्रम, सब की कमाई, सब के खर्चे परिवार के ही प्रति हैं। यही संयुक्त परिवार का तकाज़ा है। यदि परिवार की संयुक्तता को मानते हैं तो इस तर्क को भी मानना ही होगा। अब यदि हम एक संयुक्त परिवार के भाइयों की कमाई में हिस्सेदारी को परिभाषित करना चाहें तो कह सकते हैं कि प्रत्येक भाई ने सपत्नीक जितनी-जितनी कमाई जोड़ रखी है उसे साथ मिलाकर बराबर बांट दिया जाए। यही संयुक्त परिवार का न्याय है। अन्यथा संयुक्त परिवार संयुक्त नहीं रह सकता।

- *सतीश कुमार लोप्पा*

घण्टार गोम्पा का इतिवृत्त

- के० अंगरूप लाहुली

लाहुल घाटी के बौद्ध मठ-मन्दिरों के इतिहास में त्रिलोकनाथ के पश्चात गुरु घण्टापा का विहार, स्थानीय संक्षिप्त नाम गुरु घण्टार का उल्लेख मिलता है, जो दरिया भागा के बाएं पार्श्व गोज़ंग (स्थानीय नाम गोरंग) नामक गांव के पृष्ठ भाग पर खड़ा शैल शिखर जो स्वर्णिम रेखा (मेखला) से परिवृत्त सा दिखाई पड़ता है, चक्र संवर किंवा गुरु घण्टापाद का तीर्थस्थान है। कहा जाता है कि इस पर्वत श्रेणी के अन्तिम छोर पर आचार्य पद्म संभव ने एक चैत्य विहार की स्थापना की थी। जिस में संभवत: संगमरमर से निर्मित आर्य अवलोकितेश्वर के शिरोभाग की एक पुरातन प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। इस हिसाब से घण्टार गोम्पा का काल नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध बैठता है। क्योंकि तिब्बत के मठीय इतिहास में आचार्य पद्म संभव 823 ईस्वी में प्रसिद्ध सम-यस् महा विहार के निर्माण में सहयोग के लिये तिब्बत पहुँचे थे और वे लौट कर पुन: भारत वर्ष वापस नहीं आये थे।

घण्टार गोम्पा प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य मतिसार श्री, सिद्धत्व प्राप्त कर लेने पर जिनका नाम गुरु घण्टापा (तिब्बती लामा डिल-बु-पा)पड़ा, से सम्बन्धित पीठस्थान है। बौद्ध तंत्रों में पीठस्थानों का अत्यधिक महत्व है। इसे डाक-डाकिनियों, देव-देवियों का निवास स्थान या सिद्धाचार्यों की तपोभूमि माना जाता है। महा सिद्धाचार्य, जो बौद्धों के प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में से एक हैं। पद-कर-छोस्-जुङ नामक एक प्राचीन भोट भाषा के ग्रन्थ के अनुसार वे पूर्व भारत के वारेन्द्र जनपद के राजकुमार थे। अपने माता-पिता के देहावसान के पश्चात् भिक्षुत्व ग्रहण कर विहार वासी हो गए थे।

तिब्बत के डि-गुङ क-ग्युद-पा निकाय (= पंथ) के प्रवर्तक आचार्य क्यो-पा जिग-तेन-गोन्पो (1143-1217 ई०) ने डिलबु-रियी-नस्-शद् (= घण्टा गिरि का वृत्तांत) नामक पुस्तिका में लिखा है कि इस तांत्रिक पीठ के तीर्थाटन की पवित्र भावना से प्रवृत्त होकर यदि कोई श्रद्धालु इस दिशा में तीन चार कदम भी आगे बढ़ा ले तो उस कृत पुण्य के फलस्वरूप उसे तीन जन्मों तक नरक भोगी नहीं होना पड़ेगा। आगे वे लिखते हैं कि लाहुल की पवित्र भूमि एक महान कल्पद्रुम के समान है। यहां रह कर तप-साधना करने वाले अभ्यर्थियों की मनोकामनाएं शीघ्र पूरी हो जाती हैं।

यही सब वजह थी कि अतीत में यहां पर देश-विदेश के साधु-सन्यासीवृन्द तीर्थाटन और तपश्चर्य के अभिप्राय से आते रहे हैं और अभीष्ट को प्राप्त कर सिद्ध होते रहे हैं। इनमें आचार्य मतिसार श्री जो 7वीं शताब्दी में साधना करने के निमित्त लाहुल पहुँचे थे और त्रिलोकनाथ के ऊपर किसी जंगल में साधनारत हो गये थे। प्रारम्भ में वे शील सम्पन्न भिक्षुवस्त्र में रहते थे। वे बड़े दिव्य एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले पुरुष थे। यद्यपि सिद्धों के विषय में काल निर्णय कर उन्हें इतिहास की परिधि में आबद्ध करना कठिन ही नहीं अपितु हास्यास्पद सा भी लगता है। परन्तु अब तक उपलब्ध तथ्यों के आधार पर गुरु घण्टापाद का समय 7वीं शताब्दी के आसपास ही है, और उस समय वे लाहुल में रह कर साधना कर रहे थे। एक समय त्रिलोकनाथ के मुखिया (जागीरदार) ने अपना आदमी भेजकर उन्हें अपने पास आने के लिए न्यौता भेजा, परन्तु सिद्धाचार्य ने उनका न्यौता स्वीकार नहीं किया। दूसरी बार और तीसरी बार भी न्यौता भेजा परन्तु वे नहीं आये। सिद्धाचार्य ने स्पष्ट शब्दों में कहला भेजा कि मेरे जैसे सन्त-सन्यासी, विशेषकर एक भिक्षु के लिये किसी घर-गृहस्थी वाले के यहां व्यर्थ में जाना नियम और आचार के विरुद्ध है। इस प्रकार मैं आपके पास नहीं आ सकता। ज्ञातव्य है कि बौद्ध शासन में ऐसे भी भिक्षु होते थे, जिन्हें अरण्य में खड्ग-विषाण (= गैंडा) के समान एकान्तवास अधिक प्रिय होता था। ऐसे भी भिक्षु थे जो भिक्षु-विनय के नियमों के पालन करने को अधिक महत्व देते थे, वे विनयधर भिक्षु कहलाते थे।

घण्टार गोम्पा की प्राचीन इमारत

मुखिया सिद्धाचार्य के उत्तर को सुनकर क्षुब्ध हो गया और अपने आप को बड़ा अपमानित अनुभव

करने लगा। वह क्रोध के मारे आग बबूला हो गया। यद्यपि सिद्धाचार्य के संवाद में उनके अपमानित होने की कोई बात नहीं थी, परन्तु राजशक्ति के मदांधों को उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी घटना प्रिय नहीं होती। इस पर मुखिया ने सिद्धाचार्य के विरुद्ध षड़यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। उसने गांव की एक सुरा बेचने वाली स्त्री से सम्पर्क स्थापित कर कहा कि प्रकृति ने तुम्हारी लड़की पर सभी तरह की सुन्दरता लुटा दी है। उसमें पुरुषों को विचलित करने की शक्ति विद्यमान है और साधु-सन्तों को उनके शील से च्युत करने का छल भी है। कल से लड़की को उस जंगल में भेजा करो जहां एक साधु साधना में बैठा है। उसे छलाकर उसका शील तुड़वाने की कोशिश करवाओ। इस कार्य के निमित्त राज्य की ओर से तुम्हें मुँह मांगा पुरस्कार मिलेगा।

इस प्रकार दूसरे दिन से वह स्त्री अपनी चौदह वर्षीय कन्या को जंगल भेजने लगी और साथ में सिद्धाचार्य के लिए अच्छे-अच्छे पकवान भी तैयार कर भिजवाने लगी। सिद्धाचार्य वीतराग थे अत: किसी स्त्री के सुलभ छल और सुन्दरता पर एक दम मोहित होने वाले नहीं थे। तो भी वर्षों के सम्पर्क और विषय की निकटता के कारण एक दिन वे विचलित हो उठे और कन्या को, जो वास्तव में एक धर्मडाकिनी थी, साधना के एक अंग के रूप में अपना लिया। समय बीतता गया, धीरे-धीरे उन से दो सन्तानें उत्पन्न हुईं। एक पुत्र और दूसरी पुत्री। सिद्धाचार्य के लिए भोजन-वस्त्र की समस्या तो थी नहीं क्योंकि एक तो वे आत्म-निग्रही थे, दूसरा वे अपने योगबल से भी सारी आवश्यकताएं जुटा लेते थे। इस प्रकार वे कभी भी नीचे गांव या कस्बे में नहीं उतरते थे।

सिद्धाचार्य के शील भ्रष्ट होने की बात जब गांव के मुखिया के कानों में पड़ी तो वह फूला न समाया। अब क्या था, उसने तुरन्त एक जन सभा आयोजित करवाई और लोगों से कहा कि हम ऊपर जंगल में रहने वाले उस पाखण्डी साधु को यहां सभा के मध्य बुलाकर उसकी निन्दा और अपमान करना चाहते हैं। जब हमने उसे राजभवन में आने के लिए न्यौता भेजा था तो उसने यह कह कर हमारा निमंत्रण ठुकरा दिया था कि मेरे जैसे साधु-सन्यासी को विशेष कर भिक्षु को व्यर्थ में किसी घर-गृहस्थ के यहां जाना नियम और आचार के विरुद्ध है। आज वह स्वयं हम से भी बदतर, सन्यासी के वेश में पत्नी के साथ जंगल में रह कर धर्माचार्य का आडम्बर रच रहा है। इतना ही नहीं, अब तो उसके दो-दो बच्चे भी हैं। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है? हम उसके कुकृत्य का यहां पर पर्दाफाश करना चाहते हैं। जब वह यहां आ जाए तो हम उसको सभा के मध्य बिठाएंगे। तब मैं उठकर उसकी निन्दा करते हुए ताली बजाऊंगा तो आप लोग सभी मेरा अनुकरण करते हुए ताली बजाना। उस ढोंगी और पाखण्डी साधु की निन्दा करना। यह कहकर मुखिया ने एक आदमी को उस जंगल में सिद्धाचार्य को बुलाने के लिए भेजा और यह भी कहला भेजा कि आज गांव में लोग आपके दर्शन करना चाहते हैं। अत: आप सपरिवार सभा में पधार कर जनता की मनोकामना पूरी करने का कष्ट करें। थोड़ी देर के पश्चात् सन्त महात्मा अपनी पत्नी और दोनों बच्चों के साथ सभा स्थान पर पहुंच गए। सारी जनता स्तब्ध बैठी सभा की कार्यवाही बड़ी व्यग्रता के साथ देख रही थी। इतने में मुखिया बड़े नाटकीय ढंग से उठा तथा महा सिद्धाचार्य और उनके परिवार की ओर अभिमुख होकर कहने लगा। यह विशाल जनसमूह आपके दर्शन के लिए नहीं अपितु आपके अनैतिक कर्मों की निन्दा करने के लिए एकत्र हुआ है। कभी आप अपने भिक्षुपन की दुहाई देते हुए हमारे श्रद्धापूर्वक दिए गए न्यौते और निमन्त्रण को तृण की भांति ठुकरा देते थे। आज आप की यह अवस्था हमें कुछ सोचने और बोलने के लिए विवश करती है। अब आप जनता को बताएं कि यह औरत और बच्चे अपके कौन और क्या लगते हैं? इतना कहते हुए उसने एक ठहाके के साथ ताली बजाई तो पूरे जनसमूह ने भी तालियां बजा दी। निन्दा के शब्द और तालियों की गड़गड़ाहट की आवाज़ से तराई गूंज उठी।

महा सिद्धाचार्य बड़े इतमिनान के साथ बैठे रहे। कुछ क्षणों के पश्चात् दाहिने हाथ से पुत्र को पकड़ा तो वह वज्र के रूप में परिणत हो गया। बायें हाथ से पुत्री को पकड़ा तो घण्टी बन गई। पत्नी को अंकवारी में लेकर सबके देखते-देखते आकाश मार्ग से पूर्व दिशा की ओर उड़कर दरिया चन्द्र और भागा के पार्श्व में अवस्थित पर्वत की चोटी पर उतर कर वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। दूसरे शब्दों में अपने इष्ट देव श्री चक्रसंवर के साथ एकत्व को प्राप्त कर गये। वह अभागा जनसमूह एक टक आकाश की ओर देखता रह गया। कोई-कोई कातर स्वरों में आवाजें लगाने लगे, पर अब वहां पर उनके नाद सुनने वाला कोई

नहीं रह गया था। सभी ने अपनी गलती महसूस की। पंछी उड़ चुका था। अब रोने, पछताने और गिड़गिड़ाने से भी कोई लाभ नहीं था।

उस घटना के पश्चात् उपर्युक्त पर्वत का नाम घण्टा-गिरि अर्थात् डिलबु-री पड़ा तो वह नाम अब तक अक्षुण्ण चला आ रहा है। घण्टी = डिलबु। गिरि = री यानी पर्वत। स्थानीय बोलियों में भी उपरोक्त डिलबु-री शब्द प्रचलित है। परन्तु डिलबु-री पर्वत श्रेणी के छोर पर स्थित इस प्रदेश के प्राचीनतम बौद्ध विहार को यहां की पटन वादी की बोली में 'गुरुघण्टार' या घण्टार गोम्पा कहते हैं। वास्तव में यही नाम प्राचीन और सार्थक लगता है। यूँ गुरुघण्टार के लिए भोट साहित्य में 'गन्धोला' और इस क्षेत्र की अन्य भोट भाषा-भाषी 'गन्धाला' कहते हैं। वस्तुत: यह गन्धोला या गन्धाला नाम, बुद्धकुटि के पर्यायवाची 'गन्धालय' शब्द का विकृत रूप है। घण्टा-गिरि का डिलबु-री और घण्टार गोम्पा का गन्धोला नाम सीमावर्ती तिब्बत के बौद्ध प्रचारकों के पहुँचने के पश्चात् प्रचलित हुआ होगा ऐसा लगता है।

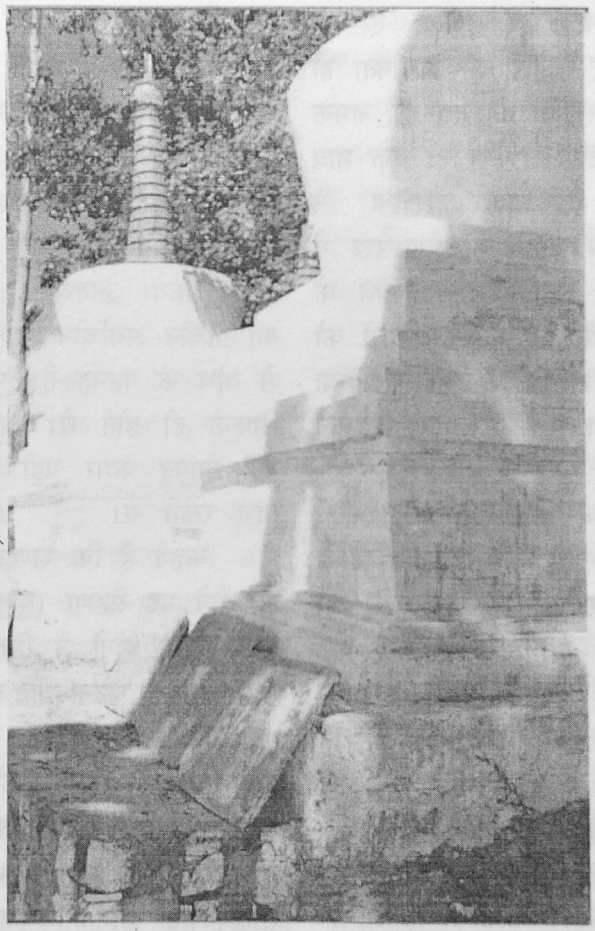

10वीं शताब्दी में लोन्च़-वा रिन-चेन-ज़ङ-पो यानि रत्नभद्र जिन्होंने स्पीति के जगत प्रसिद्ध ताबो (= ताफो) मठ की स्थापना की थी। भोट द्रुम-शूकर वर्ष यानी 975 ई० में अठारह वर्ष की अवस्था में विद्या अध्ययनार्थ कश्मीर जाते समय पश्चिमी तिब्बत के गुगे नामक स्थान से प्रस्थान कर किन्नौर और स्पीति होकर लाहुल के रास्ते गुज़रा था। उन्होंने गन्धोला (उनका आशय सम्भवत: पर्वत) की चोटी पर धर्ममुती (= मूर्ति) नामक एक स्वयंभू चैत्य जो चारों ओर से वर प्रद परिवृत्त जल और वृक्षों से पवित था, देखा। यह बात उनकी जीवनी में मिलती है। परन्तु उस समय उनका छात्र जीवन होने के कारण विशेष संवाद उल्लिखित नहीं है।

ग्यल-वा गोद-छ़ङ-बा (1189-1258 ई०) जो लाहुल के धार्मिक इतिहास में एक बड़े चर्चित व्यक्ति रहे हैं, तिब्बत के सुदूर ल्हो-डग नामक प्रदेश से तप-साधना करने के अभिप्राय से लाहुल आये थे और निरन्तर तीन वर्षों तक तपस्या करने के पश्चात् उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति हुई थी। वे अपने यात्रा विवरण में लिखते हैं कि लाहुल की यात्रा में जब मैं शङ-शुङ प्रदेश को पार कर स्पीति होकर लाहुल पहुँचा तो सर्वप्रथम गन्धोला गया। जो योजन भर में फैला एक पहाड़ पर अवस्थित था। गन्धोला वृक्षों और योगी-योगिनियों के तप स्थानों से परिवृत्त धर्ममूर्ति नामक एक दर्शनीय स्वयंभू चैत्य था। मैं एक जाड़े का मौसम वहां पर रहना चाहता था परन्तु शीत और बर्फ के आधिक्य के कारण रहना असम्भव सा लगा। अत: लाहुल से तान्त्रिक पीठ जालन्धर (वर्तमान नगरोटा) को प्रस्थान किया, इत्यादि।*

सम्भवत: दुभाषिया रत्न भद्र और गोद-छ़ङ-बा द्वारा उल्लिखित 'धर्ममूर्ति' नामक चैत्य आचार्य पद्मसम्भव का बनवाया वह चैत्य विहार ही हो सकता है। सन् 1882 ई० में लद्दाख मण्डल के तग-ना महा विहार के प्रधान लामा टशी-तम्फेल तन्दी और गौशाल वालों के अनुरोध पर जब यहां पहुँचे थे तो उस समय आचार्य पद्मसम्भव द्वारा निर्मित चैत्य विहार यानि धर्ममूर्ति लगभग खण्डहर के रूप में बदल चुका था। उनके घण्टार गोम्पा आगमन के विषय में कहा जाता है कि अतीत में एक समय अनावृष्टि के कारण गोम्पा के आंचल में स्थित तन्दी और गौशाल नामक गांव वालों के खेतों की सारी फसल सूखकर बर्बाद हो गई तो इससे दोनों गांव में हा-हाकार मच गया। इस अकाल से उबरने के लिए दोनों गांव वाले आपस में विचार-विमर्श कर एक ज्योतिष शास्त्र के मर्मज्ञ लामा को बुला ले आए। लामा को वे आदर भाव में 'गुरु' कह कर सम्बोधित

करते थे। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र की तमाम पोथियों को छांट मारा और सूखा पड़ने का कारण घण्टार गोम्पा के दीर्घकाल तक ध्वस्त होकर पड़े रहने का अनिष्ट फल बताया। इस पर तन्दी, गौशाल तथा वरपा कोठी के तीनों नम्बरदारों ने संगोष्ठी की और विचार-विमर्श के पश्चात् अपनी फरयाद लेकर सदर मुकाम केलंग गए। जहां कोलोंग राजघराने के ठाकुर हरिचन्द (1830-1902 ई०) जो उस समय अंग्रेज़ सरकार की ओर से अवैतनिक दण्डाधिकारी नियुक्त थे, उन्होंने नम्बरदारों की बातों को अच्छी तरह सुना।

विद्वान न्यायाधीश ठाकुर हरिचन्द्र एक गम्भीर एवं दूरदर्शी प्रशासक थे। उन्होंने सोचा कि विहार की मुरम्मत का काम सब कोई नहीं कर सकता। ऐसा न हो कि जीर्णोद्धार के नाम पर विहार की प्राचीनता ही नष्ट हो जाए। उस समय लद्दाख के तग-ना नामक बौद्ध विहार के प्रधान लामा टशी तम्फेल ही एक मात्र बौद्ध वास्तुकला के विशेषज्ञ थे। ठाकुर हरिचन्द्र ने गोम्पा के जीर्णोद्धार का काम उन्हीं की देख-रेख में करवाना उचित समझा। अत: उन्होंने मान्य लामा के नाम पर एक पत्र लिखकर तथा पत्र को नम्बरदारों को सौंपते हुए कहा कि यह पत्र लद्दाख के तग-ना गोम्पा के प्रधान लामा के लिये है। इसे शीघ्र लद्दाख पहुंचाने की व्यवस्था करें।

ठाकुर हरि चन्द्र का पत्र प्राप्त करते ही लामा टशी तम्फेल लाहुल के लिये चल पड़े और घण्टार गोम्पा पहुंचकर जीर्णोद्धार के नाम पर पुराने खण्डहर से जरा हटकर एक नये भव्य विहार की स्थापना कर दी। फलस्वरूप बारिश समय पर बरसने लगी। इस से घण्टार गोम्पा के आस-पास तथा अंचल में स्थित तन्दी और गौशाल वालों की सूखी ज़मीन हरी-भरी घास और फसलों से भर गई।

इस सम्बन्ध में रचित गुरे गीत की कुछ पंक्तियां इस प्रकार से हैं:

तांदी घुशाड़े ए साला बी-गूड़ी जी ओ ।।
ए तांदी घुशाड़े ए डुणा-चूणा की ती जी ओ ।।
ए लाम्बा गुरू ए शादी-कारी आणी जी ओ ।।
एक त्रिजी लम्बूरा ए के-लांगा कोठी जी ओ ।।
ए नेगी हरिचन्दा ए पू-छूणी लागी जी ओ ।।
ए तांदी घुशाड़ रि ए सा-लाना फेरी जी ओ ।।
ए तांदी घुशाड़े ए शा-गुणा कीती जी ओ ।।

उक्त गोम्पा के जीर्ण संस्कार से सम्बन्धी एक अन्य गुरे-गीत की कुछ कड़ियां निम्न प्रकार से हैं:

तान-ज्णा घुशाड़े यो शिव-शागुणा कीती जी ओ ।।
गुरू-टशी ताम-फेल, घण्टा-रा चलुणा जी ओ ।।
सैह-णा तो-ता ये ग्रांथी-ना खोली जी ओ ।।
ग्रांथी-ना खोली ये रूपा-या दीती जी ओ ।।
सैह-णा दर-ग्यस् ये ग्रांथी-ना खोली जी ओ ।।
ग्रांथी-ना खोली ये रूपा-या दीती जी ओ ।।
सैह-णा नो-मो ये ग्रांथी-ना खोली जी ओ ।।
ग्रांथी-ना खोली ये रूपा-या दीती जी ओ ।।
दर-ग्यस् नो-मो ये का-बू ग्रन्थाई जी ओ ।।**

लामा टशी तम्फेल के लद्दाख से आकर घण्टार गोम्पा के पाद में स्थित थुवचिलिंग विहार पहुंचने पर तन्दी और गौशाल के दो सयाने व्यक्तियों, श्री तोता और श्री दर-ग्यस् ने अपनी कमर पट्टी की गिरह खोलकर कुछ सिक्के उन्हें चढ़ा दिए। तत्पश्चात् सुमनम गांव की उपासिका जिन्हें लोग सम्बोधन में नोमो कहते थे, अपने कमरबन्द की गिरह खोलकर अल्प संचित धन (रूपये) लामा टशी तम्फेल को घण्टार गोम्पा के जीर्ण संस्कार में चन्दे के रूप में अर्पण किये। ज्ञातव्य है कि लाहुल की तीनों वादियों का प्राचीन-अर्वाचीन पहनावा चोगा है। इसे कमर पट्टी से बांध के पहनते हैं। पुराने समय में रूपये-पैसे प्राय: सिक्के ही होते थे। अत: सिक्के जेब या बटुवे में नहीं अपितु कमर पट्टी के एक भाग पर गांठ देकर बांध रखते थे।

कहते हैं कि घण्टार गोम्पा के नये रूप से तैयार हो जाने पर सैहणा (बुजुर्ग) श्री दर-ग्यस् और सुमनम वाली नोमो दोनों ने मिलकर गोम्पा के जीर्ण संस्कार से सम्बन्धित घटना को कविता का रूप देकर एक गुरे गीत की रचना की।

घण्टार गोम्पा को पूर्ण रूप से संवारने के पश्चात् लामा टशी तम्फेल ने बुद्ध शासन की अभिवृद्धि तथा महा विहार की परिरक्षा के लिये देवी दीर्घायुष्मति क़ो अधिकृत कर उनकी पूजा-अर्चना के निमित्त देवी की एक प्रतिमा भी विहार में प्रतिष्ठित की थी। परन्तु खेद की बात है कि दो वर्ष पूर्व वह अमूल्य पुरातन मूर्ति चोरी हो गई। लामा टशी तम्फेल वास्तुकला के साथ-साथ चित्रकला के भी विशेषज्ञ थे। उनके द्वारा चित्रित तांत्रिक देव परिवारों का गण्डक वर्तमान विहार की छत के उलटानों पर देखा जा सकता है।

उपर्युक्त सभी घटनाओं के पश्चात् हमें इस बात का आभास मिलता है कि गोम्पा के नये रूप से

तैयार हो जाने पर तीनों नम्बरदारों ने गहन विचार-विमर्श कर गोम्पा का स्वामित्व लामा टशी तम्फेल को सौंप दिया लगता है। क्योंकि इस पुरातन गोम्पा की देख-रेख आज भी लद्दाख के तग-ना गोम्पा के परम्परागत अवतारी पुरुषों द्वारा ही होती है।

लद्दाख मण्डल के जंस्कर प्रदेश का तग-री गोम्पा, तग-ना गोम्पा का शाखा विहार है। इस प्रकार थुवचिलिंग गोम्पा की व्यवस्था के लिए वर्तमान पुजारी लामा इसी गोम्पा से नियुक्त होकर आता हैं। इससे घण्टार गोम्पा पर तग-ना महा विहार के अवतारी पुरुषों का आधिपत्य स्पष्ट है।

बुद्ध ने कहा - 'अनिच्चावत संखारा उप्पाद वय धम्मिनो।।'

अर्थात् सब संस्कार (वस्तुमात्र) अनित्य है। उत्पन्न होना और नाश होना उसका स्वभाव है। लामा टशी तम्फेल द्वारा निर्मित महा विहार भी काल के थपेड़ों से धीरे-धीरे जर्जर हो गया था जिसे तग-ना गोम्पा के वर्तमान चौथे अवतारी लामा नवङ - दोन-योद-दो-जे ने दो-दो बार जीर्णोद्धार किया है। उनका कहना है कि महा विहार के जीर्ण संस्कार के समय विहार के समीप ही एक स्थान से पत्थर की सैकड़ों स्लेटों का एक अद्‌भुत खान प्राप्त हुआ था। जिससे विहार के पुनरोद्धार में बड़ी सुविधा हुई थी।

पुराकाल में लाहुल के शशुर, भोकर, तयुल, लिण्डुर, ओथंग, ग्रमफुग गोम्पा तथा तिनन मने आदि सभी बौद्ध विहार इसी गोम्पा की शाखा-प्रशाखायें थीं। इन सभी विहारों का संचालन घण्टार गोम्पा की ओर से ही होता था। वर्तमान में विहार के पाद में स्थित एक मात्र युवचिलिंग गोम्पा को छोड़कर अन्य सभी विहार स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे हैं। इसका मुख्य कारण स्वयं घण्टार गोम्पा में किसी विशिष्ट लामा की अनुपस्थिति हो सकता है।

उपर्युक्त सभी विहार घण्टार गोम्पा के अधीनस्थ थे। इसके साक्ष्य के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन समय में उक्त विहारों में नव दीक्षित होने वाले दो युवा लामाओं को घण्टार गोम्पा के पुजारी के काम में हाथ बटाने के लिए यानि बरफ आदि हटाने के काम में सहयोग के लिए, एक जाड़े में तीन महीने के लिए चकरी = चाकरी अर्थात अवैतनिक नौकरी का फर्ज़ अदा करना पड़ता था। उसके बाद ही युवा लामाओं को लामा संघ की स्थायी सदस्यता की मान्यता मिलती थी और वे मृतकों के नाम पर संघ को चढ़ाई जाने वाली दक्षिणा के भागीदार होते थे, अन्यथा नहीं। दूसरी बात संघ की दक्षिणा से दो-चार पैसे देम्-बुल (=अंशदान) निकाल कर एक कोष स्थापित किया जाता था। साल के अन्त में उस संचित धन को शशुर गोम्पा के भण्डारी और पुजारी घोड़े पर सवार होकर उसे थुवचिलिंग गोम्पा पहुंचाने जाते थे। वहां पर भण्डारी और पुजारी के लिए खाने-पीने की व्यवस्था और घोड़ों के लिए चारा-पानी का इंतज़ाम थुवचिलिंग गोम्पा की ओर से होता था।

इसी प्रकार चाकरी करने वाले युवा लामाओं के कर्त्तव्य-पालन के सेवा काल भोट पंचांग के अनुसार द्वितीय माह की तीन तारीख को समाप्त हो जाता था। वे घण्टार गोम्पा से नीचे उतर आते थे। गोम्पा के पाद पर स्थित जल-भण्डारण पर थुवचिलिंग गोम्पा का भण्डारी उन युवा लामाओं के लिए जलपान आदि की व्यवस्था कर स्वागत करता था। जिसे स्थानीय बोली में शन-केन कहा जाता था और उसी दिन लोग तन्दी पुल पर जमी बरफ की परत पर मिट्टी डालते थे।

छ़-छ़ा मेला

प्राचीनकाल में घण्टार गोम्पा जब अपने विकास की चरमसीमा पर पहुंचा हुआ था तब उस समय वहां पर लामाओं और सिद्धों की सदा भीड़भाड़ लगी रहती थी, और बड़े पैमाने पर धार्मिक अनुष्ठान आयोजित होते थे। श्रद्धालुओं को बौद्ध अध्यात्म जगत की महा विभूतियों के दर्शन एवं सान्निध्य सहज सुलभ होता था।

स्थानीय पंचांग के हिसाब से संभवत: जून महीने के आखिर में दो दिनों के लिए छ़-छ़ा का वार्षिक मेला लगता था। जिस में तीनों वादियों के लोग बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। तिनन राजघराने के ठाकुर, शिल्ला गोम्पा के बगल से होकर एक संकीर्ण मार्ग घण्टार गोम्पा की ओर से निकलता था, घोड़े पर सवार होकर उसी रास्ते मेले में सम्मिलित होने के लिए आते थे। उनका मेले में आना अनिवार्य समझा जाता था। छ़-छ़ा देव भाषा संस्कृत शब्द का अपभ्रंश रूप है। प्राचीन समय में तीनों वादियों के लोग मृतकों के अवशेष तन्दी संगम में प्रवाहित करने के लिए ले जाया करते थे। लोग उन अवशेषों में से थोड़ा सा अंश थुवचिलिंग विहार में रखवा लेते थे। उस वार्षिक मेले के अवसर पर लामा लोग उन अवशेषों को पीसकर तथा माटी में सन्नाकर, तथा साच्छ के सांचे में ढालकर छोटे-छोटे स्तूपों का आकार दे देते थे। उन

नव निर्मित स्तूपों के प्रतिष्ठान यानि उपलक्ष्य में उक्त वार्षिक छ्-छा मेला आयोजित होता था।

घण्टार गोम्पा का आंचलिक गांव गौशाल के लोग एक पवित्र छड़ी लेकर जलूस के रूप में मेले में आते थे। गुर के नाम पर तन्दी गांव का एक लुहार शॉंणन (=सांकल) लेकर आता था। उनके घण्टार गोम्पा पहुंचने पर मेला आरम्भ होता था। गुर अपना उत्तरासंग खोलकर तथा नग्न पीठ पर शॉंणन (ज़ंजीरों का गुच्छा) प्रहार करता हुआ पहले गोम्पा के आंगन में स्थित बड़े झण्डे का तत्पश्चात तीन बार महाविहार का चक्र लगाता था, साथ में भूत-प्रेतों के नाम पर रिञ्जा (=भूत पिण्ड) प्रक्षेप करता जाता था। वस्तुत: मेले का मुख्य आकर्षण वही होता था। सुमनम के फुंकेगर गांव के तीनों परिवार घण्टार गोम्पा का आश्रित कुटुम्ब माना जाता था। अत: उत्सव में उन परिवारों की उपस्थिति अवश्यंभावी होती थी। यद्यपि यह मेला केवल दो ही दिनों के लिये आयोजित होता था परन्तु लोग इसमें भाग लेने के लिए दूर-दूर से पहुंचते थे। इस मेले में छोटी-छोटी दुकानें भी लगती थीं और मेले के नाम पर मदिरा का खुलकर सेवन होता था।

कालान्तर में घण्टार गोम्पा की व्यवस्था में शिथिलता आने लगी तो इससे छ्-छा मेला और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन स्वत: रुक गया। आज वादी के लोगों को उक्त आयोजनों के विषय में तनिक भी प्रतीति नहीं है। वे सब कुछ भूल चुके हैं।

पाद टिप्पणियां –

**प्राचीन तीर्थ यात्रियों के यात्रा विवरण से धर्ममूर्ति नाम के जिस स्तूप की बातें मिलती हैं, उसका आज कहीं अता-पता नहीं चलता। परन्तु ऐसा लगता है कि वर्तमान विहार के आधा किलोमीटर ऊपर फो-डंग नामक स्थान पर खण्डहर के रूप में पत्थरों का एक बड़ा सा ढेर पड़ा हुआ है। सम्भवत: वही धर्ममूर्ति चैत्य विहार का अवशेष है। वैद्य नोरफेल जो इस निबन्ध के लिए सामग्री जुटाते समय यानि 30 सितम्बर, 2002 को, 82 वर्ष के वय प्राप्त वृद्ध लामा हो चुके थे। बचपन में अपने माता-पिता के थुवचिलिंग गोम्पा के भण्डारी के सेवाकाल में वहां पर रहे हैं। मैंने शशुर गोम्पा में उनका साक्षात्कार लिया तो उस समय उन्होंने कहा कि घण्टार गोम्पा के ऊपर फो-डंग नामक स्थान के खण्डहर के चारों ओर देवदार के चार-पांच पुराने विशाल वृक्ष खड़े थे। शरद ऋतुओं में गौशाल और तन्दी के चरवाहे जब भेड़ और बकरियों को चराने के लिए आते थे तो उन लोगों ने धीरे-धीरे करके उन सभी पुराने वृक्षों को जला डाला। वैद्य जी का कहना है कि उन अर्ध जले वृक्षों के धड़ों को उन्होंने स्वयं देखा था।*

*** इन गुरे गीतों के मुख्य गवैये पटन वादी के क्रोजिंग गांव के निवासी श्री टशी रिगज़िन और सह-गायक श्री सोनम राम ठौलोंग वासी हैं। गीत की रिकॉर्डिंग 02-07-1974 को सत्रह मील, कुल्लू में हुई थी। अफ़सोस! कि इस समय उक्त दोनों महानुभाव इस अनित्य संसार को त्याग चुके है।*

(मौर्य निकेतन, दशाल, डाकघर हरिपुर)

'पाठकीय' पृष्ठ 3 का शेष भाग ....

(ख) पृष्ठ 23, कॉलम 1 - 'इसी लिए तो मैं आर्य-अर्हतों का सेवा-सत्कार किया करता हूं', में 'की सेवा और सत्कार किया करता हूं।' सेवा (स्त्री लिंग) एवं सत्कार (पुलिंग) को समस्त पद बनाने से यह गड़बड़ी हुई है। क्योंकि यहां लिंग का प्रभाव क्रिया पर पड़ता है। ऐसे मामलों में विग्रह करके लिखना ठीक रहता है। अन्यथा सत्कार की जगह कोई स्त्रीलिंग शब्द खोजना पड़ेगा। या फिर अलग-अलग दो वाक्य बनाए जा सकते है। इस अंक की त्रुटियों के बारे सामान्य सुझाव यही है कि लम्बे वाक्यों से बचें। सारे अलंकार एक ही वाक्य पर न थोंपें। डिक्शनरी, थिसारस (पर्यायवाची, समानार्थक कोश) की सहायता लें। इसमें कोई शर्म नहीं है। कहावत है - 'भाषा पर किसी का स्वामित्व नहीं होता।' हम सब नित नए प्रयोगों द्वारा भाषा का परिष्कार करते है।

–अजेय

चन्द्रताल में सभी लेख, कहानी और कविताएं निस्संदेह अच्छी है। मै इसका नियमित पाठक हूँ। आगे भी आप लोग विद्वतापूर्वक लाहुल की संस्कृति, इतिहास, धर्म और विशेष रूप से भिन्न-भिन्न भाषा एवं बोलियों पर भी सम्बद्ध विद्वानों के लेख आदि मंगवाकर प्रकाशित कर सकें तो बेहतर होगा। जिससे हमारे यहां बोली जाने वाली भाषा एवं बोलियों को एक नया आयाम मिलेगा। साथ ही निवेदन है कि यदि स्पीति, जो हमारे ज़िले का एक अभिन्न अंग है, उसके सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषागत इतिहास पर भी यदि कोई लेख आदि आएं तो अधिक बेहतर होगा। पुन: मेरा निवेदन है कि आप उपरोक्त सभी विषयों को गम्भीरता से विचार करते हुए चन्द्रताल के प्रकाशन को उत्तरोत्तर बढाते रहें।

– ठिन्ले नम्ग्ल

शकोग् बनाम म्हरपिणि

पटन क्षेत्र में बारात जब दुल्हन के घर जाती है तो वर पक्ष द्वारा अपने साथ एक 'शकोग्' भी ले जाया जाता है। 'शकोग्' यानि कि भेड़ या बकरी का साबत धड़। इस 'शकोग्' को चादर से बांध कर पीठ में उठा कर ले जाया जाता है। और इसको उठाने की ड्यूटी सिर्फ, और सिर्फ वर पक्ष के दामाद की होती है। इस 'शकोग्' के छोटे-छोटे टुकड़े करके वधू पक्ष के रिश्तेदारों में बांटा जाता है, जो लोग दुल्हन को 'ज़ोङ' यानि उपहारस्वरूप कुछ रुपए देते हैं। इस मांस के टुकड़े को 'ज़ोङ-शः' कहते हैं यानि उस उपहार के बट्टे का मांस। 'ज़ोङ' जो दिया जाता है वह घर के लोगों द्वारा दिया जाता है और रिश्तेदारों द्वारा बरतनदारी के आधार पर दिया जाता है। अर्थात् वधूपक्ष ने अपने रिश्तेदारों की बेटियों की शादियों में जो उपहार राशि दी होगी, वही राशि पांच-दस-बीस रुपए अधिक करके लौटाई जाती है। 'ज़ोङ' की जो भी राशि दी जाती है, वह पूर्णतः स्वेच्छा से दी जाती है, वर पक्ष इस तरफ तिरछी नज़र से भी नहीं देखता है। यह राशि पूर्णतः दुल्हन की ही सम्पत्ति रहती है आजीवन। कुछ आधुनिक पढ़े-लिखे लाहुली इस तरह से एकत्रित राशि जो दुल्हन को भेंट की जाती है, उस को 'दहेज' कहने लगे हैं, जो सर्वथा अनुचित है। 'ज़ोङ' और 'दहेज' प्रथा में कोई साम्य नहीं, दोनों के सर्वथा विपरीत लक्षण हैं। खैर.....

हम 'शकोग्' की बात कर रहे थे। इस रिवाज़ को चलाए रखने में दो बातें आड़े आ रही हैं। एक तो सभ्यता का तकाज़ा है! दूसरा, दामाद बेचारा बन ठन कर ससुराल वालों के यहां विवाह में सम्मिलित होने आता है, जब उसे भेड़ का ताज़ा कटा धड़ चादर में डाल कर पीठ पर उठाना पड़ता है, उसके कपड़ों की क्या दशा हो सकती है, यह अंदाज़ा लगाना किसी के लिए भी मुश्किल नहीं है। कुछ जैन्टलमैन दामाद इसे उठाने में शर्मिन्दगी भी महसूस करते हैं। इन वजहों के चलते लोगों ने इस रिवाज़ में परिवर्तन की ज़रूरत महसूस की। तो कई लोगों ने दोनों पक्षों की सहमति से 'शकोग्' के स्थान पर 'म्हरपिणि' (= घी+सत्तू का मिश्रण) ले जाने का चलन बनाया। यह भी सर्वमान्य नहीं हो सका। इसके साथ मुश्किल यह है कि इस मिश्रण को खा पाना काफी मुश्किल काम है। इसलिए ज़ाया बहुत जाता है। यत्र-तत्र पड़ा रह जाता है। अब चलन में यह है कि कोई 'शकोग्' ले जा रहा है, कोई 'म्हरपिणि' ले जा रहा है, कहीं-कहीं लड्डू भी देखे जा सकते हैं। यानि जिस को जो अच्छा लगा वही अपनाया।

क्या चन्द्रताल के लाहुली पाठक भी इस रिवाज़ में परिवर्तन के पक्ष में हैं? यदि हैं, तो क्या विकल्प हैं आपके पास? 'शकोग्' और 'म्हरपिणि' के साथ जो मुश्किलें हैं, वह हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं। इनके इलावा भी क्या कोई बेहतर विकल्प हो सकता है जो ज़ाया न जाए, सब को अच्छा लगे! आप लोगों के विचारों का हमें इन्तज़ार रहेगा।

-सतीश कुमार लोप्पा

दर्द का पहाड़

- डॉ० दयानन्द गौतम

जैवन्ती के ज़हन में कभी भी यह सारा आलम नहीं था जो आज सामने है। पूरा हाई स्कूल लाइन में बना, राम ढोल बज रहा है। सावधान - विश्राम, प्रार्थना, सद्विचार, आज के समाचार, प्राचार्य का भाषण, राष्ट्रीय गीत, सच एक सपना सा लग रहा था। उसे धुंधला सा याद है जब वह सात वर्ष की थी और गांव के सभी बच्चे बच्चियां इन दृश्यों का ज़िक्र करते। वह भी यह सब करना चाहती थी, देखना चाहती, वह सब अधूरा ही रहा। आज सैंतीस वर्ष में यह सब उसके सामने। उसकी आंखों में आंसू भर आए। उसने पीछे मुड़ कर देखा .....।

मां, रामू, टेकू, एलू सभी तो स्कूल जा रहे हैं फिर मैं क्यों नहीं?

- वे सब लड़के हैं।
- तो क्या हुआ?
- हुआ तो हुआ।
- फिर माया भी तो लड़की है, वह तो दूसरी में है?
- उसके पिता के एक ही सन्तान है और फिर वे ज़मींदार भी हैं।
- तो ग़रीब को कोई हक नहीं?
- तू ज़्यादा ज़ुबां न चला।

जैवन्ती का जी बैठ गया। रोज़ सभी तख्ती धोते। लिखते, स्कूल की तैयारी करते। वर्दी, स्याही, स्लेटी, कलम सब का ख्याल स्वयं करते।

उसने बापू से शिकायत की।

- मुझे भी स्कूल जाना है।
- हूं, तो हमारी बेटी पढ़ेगी?
- हां...।

बीच में माँ ने हुंकार भरी।

- इसने नौकरी करनी है क्या?

बापू निरुत्तर रह गए। थोड़ी देर बाद बोले।

-देखो देश आज़ाद हो गया है। जमाना बदल रहा है। कल किसने देखा है?

लड़कियों का कल उनका हुनर होता है जी, सिलाई-बुनाई तो यह सीख रही है, एक दो साल में चूल्हा-चौका भी सीख जाएगी।

- मैं तो कहता हूं एलू के साथ यह भी और उसी की पुरानी किताबें इसे मिलती रहा करेंगी।
- जिद मत करो जी। आठवां साल पूरा करने जा रही है। पांच-सात और कटेंगे फिर बेटी मां-बाप के घर की मेहमान ही होती है।

जैवन्ती रो पड़ी थी और बापू के हाथ पकड़ कर बोली थी।

- मां मुझे जाना है बस।
- देख लो भाग्यवान एक आध साल इसे पढ़ा लेते हैं। थोड़ा घर गृहस्थी का हिसाब-किताब भी सीख लेगी।
- हम किस स्कूल में पढ़ी हैं जी। पूरी गृहस्थी क्या आप चला रहे हैं?

मां-बाप के विचारों की तकरार तथा मेरे भविष्य का अन्धकारमय अध्याय शुरू तो हो गया पर मेरी स्कूल पहुंचने की जिद आज पूरी भी हुई पर तीस साल बाद।

घण्टी बजी। दूसरे चपड़ासी ने कहा - जैवन्ती यह तुम्हारी घण्टी है। पानी पिलाना, फाईल उठाना, अर्जी साइन करवाना। पुस्तकालय में डाक पहुंचाना, चाय लाना, आदि-आदि कार्यों का ख्याल अब जैवन्ती ही करती है।

हर तरह की घण्टियों का बजना तथा छोटे बाबू, बड़े बाबू, प्रधानाचार्य की घण्टियों की क्या-क्या ध्वनियां हैं, उसे सब पहचानना है।

जैवन्ती का दर्द पहाड़ों का दर्द है जहां औरतों की शिक्षा की मनाही थी। भाई ने स्कूल जाना है तब बहनों ने खाना बनाना। छोटे भाई को पीठ में लादे उसे अपना शैशव बिताना है। युवावस्था में चूल्हा-चौका और विवाह।

जैवन्ती के जीवन में यह शुभ अवसर आया। गांव में सादगी, दक्षता, सौन्दर्य की पर्याय जैवन्ती को कौन नहीं जानता? जिस घर जाएगी, स्वर्ग बनाएगी। किसन ने सुन रखा था सब, बस औपचारिकता के तौर पर जैवन्ती के घर वालों की राय लेनी थी।

जैवन्ती घूंघट काढ़ घर के आंगन में बिठा दी जाती है। उसके सुन्दर हाथ-पैरों को किसन को दिखाया जाता है।

बस क्या था - दो दिलों का मिलन, दो रूहों का साथ। जन्म-जन्म का साथ।

किसन भी मृदु भाषी, सुन्दर और नौकरीपेशा वाला युवक था।

कब जीवन के बाईस वर्ष कट गए मालूम भी न हुआ। इस बीच पवन, शालू तथा उमा उस के तीन बच्चे बड़े भी हो चुके हैं।

एक दुर्घटना में किसन का गुज़र जाना कितना

घातक था। किसन क्या गया जैसे उस का सारा संसार उजड़ गया। संसार की सारी खुशियां जैसे पल में मुट्ठी की रेत की भान्ति निसर गई।

पवन पहले ही एक कम्पनी में अपनी बीवी सहित नौकरी कर विस्थापित हो गया था। उमा अभी चौदहवां वर्ष पार कर चुकी थी। उस की पढ़ाई, घर की पिछली ज़िम्मेदारियां, मिलन-बरतन, गांव-माई तथा जीना-मरना के सभी रस्मो-रिवाज़ को जैवन्ती ने ही पूरा करना था।

एक ही रास्ता था सामने, वह था अनुकम्पा के आधार पर पति की नौकरी। शिक्षा की बात चली तो जैवन्ती की निरक्षरता एक अभिशाप बनी। भली खासी चौकन्नी बन्ती किसे लगती थी अनपढ़? पति के साथ शहर में कुछ वर्ष रहने के कारण उसे बोल-चाल, रहन-सहन, मान-मर्यादा तथा आधुनिकता की खासी तहज़ीब आ गई थी। परन्तु शब्दों के शहर में वह पूर्णत: अनजान थी। खैर! जीवन बसर करने के लिए किसी और साधन के बारे सोचना तो बेकार था। सामने केवल नौकरी की विवशता थी। खैर हामी भरी गई। कागज़ी घोड़े दौड़ते रहे।

अन्य औपचारिकताएं पूर्ण की गई। अन्तत: उसी स्कूल में चपरासी के पद पर जैवन्ती के आदेश आए जहां उस की अपनी बेटी नवीं कक्षा में पढ़ती थी।

उसे वह सारा बचपन याद आया। वह उछलना चाहती थी। जब वह पढ़ना चाहती। जब तख्ती सुखा कर गीत गाना चाहती थी। तब अपने भाइयों को पढ़ाने का निमित्त बनी रही। आज जब भाई का घर बस गया तो जैवन्ती को ढाढस का शब्द भी नहीं कहा जाता। खैर पवन पर भरोसा था। उसे शायद बुरा लगे कि इस उम्र में वह नौकरी करेगी। पर बेटे ने भी धीरे से कहा - 'मां', देखो मेरा परिवार तो शहर में रह रहा है। उमा का विवाह, फिर यह गांव का जीवन, तुम्हें ही पूरा करना है।

वह मां से बाप बन गई। बेल से सहारा बन गई। चहकती गृहस्थी के बीच ज़िन्दगी की गुमसुम चीख के सिवा उसे क्या कहा जा सकता था? विधवा की रंग विहीन चादर पहन कर रंगमयी संसार की अठखेली में जैवन्ती आज उतरी है। उम्मीदों के मरुस्थल में उसे चलना है। पति के नाम को ज़िन्दा रखना, उमा को पढ़ा, बड़ा कर उसे ब्याहना है। मेरे पहाड़ों और मेरी शायद यही नियति है।

(साधना स्थली, 'नारदाश्रम', कुल्लू हि०प्र०)

'मिलारेपा..' ..पृष्ठ 18 का शेष ....

शरीर पीला पड़ गया तथा कपड़े चिथड़े-चिथड़े हो गए थे। यह सब देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। मैं पूरी परह से हिम्मत हार गया था। बहुत ही बुरा अनुभव था यह ...।

यह सुनकर रेछुङ सहित वहां उपस्थित सभी श्रोतागण दु:खी मन से विरक्त हो गए तथा उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। क्षणभर के लिए वहां स्तब्धता छा गयी।

पाद टिप्पणियां

1. मिलारेपा (ठोस्पागा) के चाचा एवं बुआ। 2. मूल तिब्बती पाठ में 'फू' शब्द आया है जिसका शाब्दिक अर्थ है भीतरी घाटी। चारे की कमी के कारण मवेशियों को गांव से दूर चरागाहों में ही अस्थाई पशुशाला बनाकर रखा जाता था। लाहुल-स्पीति में जिसे डोगसा या शरना कहा जाता है। 3. याक एवं गाय की वर्ण-संकर संतति जो हिमालयी क्षेत्रों में एक उपयोगी मवेशी है। 4. मिला परिवार का खानदानी खेत जिसे होरमा नामक किसान से खरीदा गया था। 5. पारम्परिक तिब्बती कपड़ा (गोशेन) जिस पर सोने एवं चांदी का ज़री का काम होता है। 6. घास से बनी रस्सी। 7. बर्फीला तेंदुआ। 8. डायन। 9. तिब्बत एवं हिमालय क्षेत्र का लोकप्रिय मादक पेय। 10. मिला परिवार की खानदानी हवेली। 11. मृत जानवर का पूरा शरीर (लोथ) महत्वपूर्ण व्यक्तियों को सम्मान प्रकट करने के लिए प्रस्तुत किया जाता था। 12. एक शाखोग (लोथ) का दसवां हिस्सा। 13. एक जुग का तीसरा हिस्सा। (भोजनोत्सव में आमन्त्रित मेहमानों को उन के सामाजिक हैसियत के अनुसार मांस के ये हिस्से मिलते थे।) 14. मूल तिब्बती पाठ में जग शब्द आया है जो सम्भवत: तिब्बती प्रणाली में भार की सबसे छोटी इकाई थी। 15. उन दिनों तिब्बत में लम्बे आस्तीन रखने का चलन था जिनके किनारे मोटे एवं मैले होने के कारण सख्त हो जाया करते थे जिसे चाबुक की तरह इस्तेमाल किया जा सकता था।

मिलारेपा की जीवनी

अनुवाद - अजेय एवं ठिनल

चाचा एवं बुआ के अत्याचार (दु:ख सत्यों का अनुभव)

गतांक में आपने पढ़ा :-

मिलारेपा के महान दादा 'ख्युङ्पो जोसे' उत्तरी तिब्बत के गडरियों के वशंज थे। अपनी मेहनत एवं चातुर्य के बल पर उन्होंने तथा उनके वंशजों ने बहुत तरक्की की। इस खानदान ने बड़े उतार-चढ़ाव देखे। सड़कों पर फाका-मस्ती भी की और महलों का यश भी भोगा। संघर्ष के क्रम को जारी रखते हुए मिलारेपा के पिता मिला शरब ज़लसन ने च़ गाव में अथाह सम्पत्ति पैदा की। परिवार की हैसियत राजघराने के सामन्तों जैसी हो गई थी। दूर-दूर तक मिला परिवार का यश फैला। खबर पा कर उनके पैतृक गांव चुङ्पाची से चचेरा भाई तथा चचेरी बहन भी च़ गांव में आकर बस गए। शरब ज़लसन उदार हृदय व्यक्ति थे। इन दोनों को यहां बसाने तथा व्यापार आदि शुरू करने में यथासम्भव सहायता की। कालान्तर में शरब ज़लसन को पुत्र (ठोस्पागा) तथा पुत्री (पेता गोन्क्यिद) प्राप्त हुए। ये बच्चे राजसी सुख सुविधाओं में पलने लगे। अब आगे ...

रेछुङ ने पूछा -- "गुरुवर, सुना है पिता मिला शरब ज़लसन के न रहने पर आपने अनन्त कष्ट झेले। कुछ उस बारे बताएं।"

मिला रेपा ने आगे सुनाया --

जब मैं सात वर्ष का था, मेरे पिता एक असाध्य रोग से ग्रस्त हो गए। हकीमों और भविष्य वक्ताओं ने घोषणा कर दी कि वे अब नहीं बचेंगे। स्वयं पिता जी को भी विश्वास हो गया कि अब मृत्यु निश्चित है। उन्होंने कुछ ग्रामवासियों, पड़ोसियों, निकट संबंधियों, चाचा और बुआ आदि को बुला कर अन्तिम इच्छा सुनाई --

"इस गम्भीर बीमारी के कारण मैं अब अधिक जी नहीं पाऊंगा। मेरा पुत्र अभी छोटा है। आप सभी संबंधियों को, विशेषकर चाचा एवं बुआ[1] को इसलिए यहां बुलाया गया है कि मैं अपनी जायदाद के बारे विस्तार में जानकारी दे दूं। ऊपर नाले के भीतर ढलानों[2] पर मेरे ज़ो[3], गाय, घोड़े, भेड़ आदि मवेशी हैं। नीचे गांव में 'होरमा डुसुम[4]' तथा उसके इलावा भी अनेक ऐसे बड़े-बड़े खेत हैं, आम आदमी जिनकी कल्पना भी नहीं कर सकता। गौशाला में मवेशी हैं तथा ऊपर घर में बर्तन, सोना, चांदी, लोहा, तांबा, फिरोज़ा, गोस्छेन[5] तथा खाद्यान्न के पर्याप्त भण्डार हैं। किसी चीज़ की कोई कमी नहीं है न ही कहीं कुछ मांगने जाने की ज़रूरत है। आपसे निवेदन है, मेरी मृत्यु के बाद इस में से कुछ दान कर दिया जाए। शेष सम्पत्ति मेरे पुत्र ठोस्पागा के वयस्क होने तक आप लोगों के पास, विशेषकर चाचा एवं बुआ की ज़िम्मेवारी पर गिरवी रख रहा हूं। मेरे पुत्र की मंगनी ज़ेसे (ज़ेस्से) नामक कन्या के साथ हो चुकी है। वयस्क होने पर उनका विवाह कर दिया जाए तथा तमाम पैतृक सम्पत्ति मेरे पुत्र के हवाले कर दी जाए। तब तक आप सभी सज्जन मेरी पत्नी एवं बच्चों के सुख-दु:ख के उत्तरदायी होंगे। विशेषकर चाचा एवं बुआ से अनुरोध है कि मेरी मृत्यु के बाद इन्हें पीड़ित न किया जाए। मैं मरघट से सब कुछ देखता रहूंगा।"

इतना कह कर उन्होंने प्राण त्याग दिए।

उनकी इच्छानुसार उनके अन्तिम संस्कार के बाद उनकी सम्पत्ति में से उचित मात्रा में दान-दक्षिणा दी गई। उपस्थित लोगों में से कुछ ने कहा कि शेष सम्पत्ति मां को ही रखने दी जाए क्योंकि उसी का हक बनता है। जबकि कुछ लोगों ने परोक्ष रूप से असहमति प्रकट की। ज़ाहिर है, चाचा और बुआ भी उनमें से थे। धन-दौलत देखकर हर चतुर व्यक्ति सामीप्य जताने लगता है। उन्होंने इस अवसर पर बड़ी चतुराई से बाज़ी मार ली - "हम लोग ही मिला शरब ज़लसन के निकटतम संबंधी हैं। हम इन मां बच्चों के साथ अन्याय नहीं करेंगे। फिर वसीयत में भी तो हमें ही इस सम्पत्ति का संरक्षक नियुक्त किया गया है।"

मेरे मामा तथा ज़ेसे के पिता ने इस पर चिन्ता प्रकट की। उन्होंने वहां उपस्थित लोगों से प्रार्थना की कि पिता की सम्पत्ति पर सन्तान का ही अधिकार होना चाहिए। प्राचीन घटनाओं से उदाहरण दे देकर उन्होंने समझाने की कोशिश की कि पैत्तृक सम्पत्ति सन्तान की बजाय किसी और को दे देने से कैसे दुष्परिणाम निकलते हैं। लेकिन चाचा एवं बुआ ने बसीयतनामे की दुहाई देते हुए क्रमश: पिता एवं माता की संपत्ति पर जबरन कब्ज़ा कर दिया। बची-खुची छिटपुट सम्पत्ति भी अन्य उपस्थित लोगों में बांट दी और हम माँ बच्चे भिखारियों की सी ज़िन्दगी जीने को मजबूर हो गए।

गर्मियों में हम चाचा के खेतों में नौकरी करते। सर्दियां आते ही कताई-बुनाई के मौसम में बुआ के घर में काम करते। हमें कुत्तों से बदतर खाना मिलता

था जब कि काम गधों की तरह करवाया जाता। पहनने के लिए पुराने चिथड़े मिलते जिन्हें हम डेसमा[6] के कमरबन्द से बाँध रखते। लगातार कठोर परिश्रम से हमारे हाथ-पैरों की चमड़ी फट गई थी। खुराक की कमी से जिस्म का रंग फीका पड़ गया था। हमारे सुनहरे रेशमी बाल भद्दे मटमैले हो गए थे। हमारी दुर्दशा देखकर भावुक लोग रो पड़ते और पीठ-पीछे चाचा एवं बुआ की निन्दा करते।

माँ भी कहा करती यह बुआ पलडेन नहीं तगडन[7] है। कालान्तर में बुआ का नाम ही दुद्मा[8] तगडन पड़ गया। हम माँ-बच्चे उस मालिक विहीन जायदाद के समान हो गए जिसे हर कोई हड़पने के लिए लालायित रहता है। हमारी स्थिति उस कुत्ते से भी बदतर हो गई थी जो मालिक के मर जाने पर दर-दर भटकता रहता है। मुझे अपने पुराने दिन याद आते। हमारी हैसियत सामन्तों की सी थी। हर खासो-आम हमसे मुस्कुराते हुए मिलता। चाचा और बुआ की भी हिम्मत नहीं थी कि हमसे धृष्टतापूर्वक बात कर सकें। लोग मेरी माँ को साहसी, अकलमन्द और दानी स्त्री कहकर सराहते न थकते। उन दिनों वह निश्चित रूप से एक अमीर रसूखदार आदमी की समझदार पत्नी थी। बड़े-बड़े सरदार हमारे सामने पानी भरते थे। जबकि आज छोटे और नीच लोग भी माँ के बारे में अंट-शंट बकने से बाज़ नहीं आते -- "देखा, चतुरों को चतुरों ने घर से बाहर खदेड़ दिया। सेर को सवा सेर टकरे हैं।"

हम लहू के घूँट पीकर रह जाते।

ज़ेसे के पिता ने रहम खाकर मुझे कपड़े और जूते दिए। वे लोग हमें सांत्वना देते रहते -- "सम्पत्ति के खो जाने का क्या दु:ख? धन-दौलत तो तिनके पर पड़े ओस के समान अनित्य और महत्वहीन है। तुम्हारे पूर्वजों ने भी धीर-धीरे करके ही सम्पत्ति अर्जित की थी। हर किसी को सम्पत्ति बनाने के अवसर मिलते हैं। तुम्हें भी मिलेंगे। घबराओ नहीं, हिम्मत न हारो।"

मेरी माँ को मायके की ओर से एक उपजाऊ खेत मिला हुआ था। मेरे मामा उस पर खेती करते, तथा फसल का हिस्सा हमारे पास प्रतिवर्ष पहुंच जाया करता। दिन बीतते गए। मैं पन्द्रह वर्ष का हो गया था। यानि कि अब मेरे व्यस्क होने में ज़्यादा देर नहीं थी। इन वर्षों में मामा द्वारा भेजी गई फसल हमारे पास काफी मात्रा में इकट्ठी हो गई थी। माँ ने इस अनाज से काफी सारा माँस खरीदा । बचे हुए अनाज में से सफेद जौ से सत्तू बनाया और काले जौ से छङ[9] बनाया। लोग पीठ पीछे तरह-तरह की बातें करने लगे। "लो जी, सुना! अब करज़न खोई हुई सम्पत्ति की भीख मांगने की तैयारी कर रही है।"

कजि दुङज़ुद्[10] को दुल्हन की तरह सजाया गया। इधर-उधर से उम्दा कालीन माँग कर लाए गए। एक बड़े भोजनोत्सव की तैयारियां होने लगी। सभी नज़दीकी मित्रों और पड़ोसियों को आमन्त्रित किया गया। विशेषकर चाचा, बुआ तथा उन सभी सज्जनों को बुलाया गया, जो पिता की मृत्यु के समय उनकी वसीयत सुनने उपस्थित थे। चाचा और बुआ को भेड़ का एक सम्पूर्ण शाखोग[11] प्रस्तुत किया गया।

अन्य लोगों में जुग[12] के हिस्सेदार को जुग तथा ल्हू[13] के हकदार को ल्हू प्रस्तुत किया गया। साथ में छङ् के साथ सत्तू परोसा गया। भोजनोत्सव के मध्य में मां ने उठ कर कहा --

"तो सज्जनो! बुज़ुर्गों ने कहा है, पुत्र के जन्म के बाद उसका नामकरण होता है तथा छङ् का सेवन करने के बाद बातचीत होती है। इस अवसर पर मैं भी तीन बातें आप लोगों के सम्मुख करना चाहूंगी। मेरे पति मिला शरब ज़लसन की वसीयत के बारे आप जानते ही हैं, फिर भी मैं चाहूंगी कि आप सभी श्रेष्ठजन वह वसीयतनामा एक बार फिर से सुन लें।"

उसके बाद मामा ने वह शपथ-पत्र भरी सभा को शब्दश: पढ़कर सुनाया। माँ ने आगे कहा--

"आप सभी विद्वान लोग इस वसीयतनामे का अर्थ भलीभांति समझते हैं। हम मां बच्चों पर इस दौरान क्या कुछ बीता है यह भी किसी से छिपा नहीं है। मुझे अधिक विस्तार में जाने की ज़रूरत नहीं है। फिर भी मैंने मान लिया है कि वसीयत की शर्तों के मुताबिक ही चाचा एवं बुआ ने हम असहाय मां बच्चों की पूरी सेवा की, हमारा पूरा-पूरा खयाल रखा। हमें इस बारे में कोई शिकायत नहीं है। अब मेरा पुत्र ठोस्पागा एवं ज़ेसे व्यस्क हो गए हैं तथा सांसारिक ज़िम्मेवारियां उठाने में सक्षम हैं। अत: हमारी सारी सम्पत्ति जो आप लोगों के पास गिरवी है, लौटा दें। ताकि अपने पति की अन्तिम इच्छा के अनुसार मैं अपने पुत्र का ब्याह ज़ेसे से करवा कर पैतृक सम्पत्ति उसके हवाले कर सकूं।

चाचा ने कुटिलतापूर्वक उत्तर दिया -- "मिला शरब ज़लसन ने अपने जीवनकाल में ये तमाम चीज़ें--घर, खेत, सोना, मवेशी हम से उधार ली थीं

जो कि मरणोपरान्त उसने हमें लौटा दीं, अब इसमें तुम्हारी सम्पत्ति कहाँ से आई?"

अथाह धन दौलत देखकर चाचा और बुआ की नीयत खराब हो गई थी। वे आपस में मिल गए थे। बुआ भी उनकी बोली बोलने लगी - "हमारी जानकारी में तो तुम्हारे पास रत्ती भर सोना, मुट्ठी भर जौ, छठांक[14] भर घी, कपड़े की एक चिन्दी और एक जीवित जानवर भी नहीं था। और तुम कहती हो कि सारी सम्पत्ति दे दो। न जाने कहाँ से यह झूठी वसीयत लिखवा कर लाई हो। शुक्र करो हमने तुम माँ-बच्चों को भूखों मार नहीं डाला। उल्टे तुम्हारी रखवाली ही करते रहे। आज तुम हक मांगने चली आई? दूसरों की भलाई करने का यह फल मिल रहा है आज हमें।"

यह कहकर बुआ गुस्से से आसन छोड़ कर कपड़े झाड़ते हुए खड़ी हो गई और पाँव पटकते हुए कहने लगी - "सच पूछो तो इस घर पर भी हमारा ही अधिकार है। तुम तीनों माँ बच्चे इसी वक्त यह घर छोड़कर निकल जाओ।" उसके बाद उन्होंने माँ को थप्पड़ मारे तथा हम बच्चों को आस्तीन के किनारे[15] से मारा।

असह्य अपमान एवं दु:ख के अतिरेक में माँ ज़मीन पर लोट-पोट होकर विलाप करने लगी। उसने अपने मृत पति को पुकारा -- "देखो, हम माँ बच्चों की क्या हालत हो गई है। अन्तिम समय में तुमने, मरघट से सबकुछ देखते रहने का वचन दिया था। आज वह समय आ गया है।"

माँ को रोते देख हम बच्चों की अजीब सी हालत हो गई थी। हमें यह समझ नहीं आ रहा था कि हम रोएं या न रोएं। चाचा की बहुत सी सन्तानें थीं, अत: मामा भी भय के मारे कुछ बोल नहीं पा रहे थे। हमारे हमदर्द गांववासी रोने लगे। अन्य लोग भी रोने का नाटक करने लगे।

"तो तुम्हें सम्पत्ति चाहिए! अरे जाओ, मूर्ख किसी और को बनाओ! तुम्हारे पास अगर सम्पत्ति नहीं है तो इतने बड़े भोजनोत्सव का खर्चा कैसे उठाया, जिसमें पूरे गांव को खूब मांस, मदिरा और अन्न खिलाया-पिलाया गया। तुम्हारी कोई सम्पत्ति हमारे पास नहीं है। है भी तो हम नहीं देंगे। तुम कर लो जो करना है। चाहे फौज लेकर आओ या काला जादू का इस्तेमाल कर हमें नष्ट कर दो।"

इतना कहकर वे बाहर निकल गए। उनके पीछे उनके चमचे भी एक-एक करके खिसकने लगे।

माँ रोए ही जा रही थी। मामा, ज़ेसे के पिता तथा अन्य मित्रगण उन्हें सान्त्वना देने के लिए बैठे रहे। वे लोग छङ् का सेवन करते हुए माँ को ढाढ़स बंधा रहे थे --

"अब रोने से कोई फायदा नहीं होगा। बेहतर है तुम यहां मौजूद लोगों से चन्दा मांगो। हम सभी लोग यथासम्भव देने की कोशिश करेंगे। चाचा एवं बुआ भी सामर्थ्यानुसार कुछ न कुछ ज़रूर देंगे।"

मामा ने सलाह दी -- "यही बेहतर रहेगा। तुम पुत्र को शिक्षा के लिए भेजने का बन्दोवस्त करो। तुम माँ-बेटी मेरे पास रहकर खेती करो। कुछ न कुछ करते रहने से योग्यता आ ही जाती है। चाचा और बुआ को उनकी इस घटिया हरकत के लिए लज्जित करवाना ज़रूरी है।"

माँ ने रोते हुए कहा -- "इतनी सारी सम्पत्ति की मालकिन को आज अपने पुत्र के पालन-पोषण के लिए भीख मांगने की नौबत आ गई है। भीख मांगकर बच्चे पाले नहीं जा सकते। चाचा एवं बुआ ने शायद बहुत पहले से ही, जब इन्हें हमारा अभिभावक बनाया गया था, तय कर लिया था कि खेती-बाड़ी का कठिन काम जिसमें खूब परिश्रम करना पड़ता है, इन्ही माँ-बच्चों से करवाएंगे। खैर कोई बात नहीं। चाचा और बुआ से हमें एक धेले की उम्मीद नहीं, लेकिन पुत्र को तो शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजना ही है।"

च् (क्यङच्) गाँव के मिथोद् गद्खा नामक स्थान पर जिङ्मापा सम्प्रदाय के लु ज्ञखन (लुज्ञद्खन) नामक एक प्रख्यात तान्त्रिक था। मुझे उनके पास अध्ययन के लिए भेजा गया। सगे-सम्बन्धियों ने चन्दा करके मुझे काफी धन-दौलत दिया। ज़ेसे के माता-पिता ने खाने-पीने की चीज़ें तथा लकड़ी इत्यादि भेजें। ज़ेसे ने मुझे सान्तवना एवं शुभकामनाओं के साथ विदा किया।

माँ तथा बहन को मामा ने अपने परिवार के सदस्यों की तरह रखा। उन्हें किसी चीज़ की कमी न होने दी। गरीबी और कमतरी का अहसास ही नहीं होने दिया। लेकिन इसके बावजूद भी माँ दूसरों के यहां काम पर जाती रही तथा हम बच्चों की सुख-सुविधा के लिए धन एकत्रित करती रही। बहन (पेता गोन्क्यिद) भी दूसरों के यहां चाकरी करने लगी। बदले में उसे यथोचित भोजन एवं कपड़े मिलते। सुबह से शाम तक अत्यधिक कठोर परिश्रम से उसका

शेष पृष्ठ 15 पर....

'कुल्लू से करगिल' पर्यावरण सन्देश वाहकों की साहसिक यात्रा

– एन.जी. बौद्ध (दल नेता)

माऊण्ट एवरेस्ट पर चढ़ना आसान मान सकता हूं – एन.जी. बौद्ध (दल नेता) सकता हूं लेकिन कुल्लू से करगिल तक मोटर साईकिलों में सवार होकर पर्यावरण सन्देश को पहुंचाना अत्यन्त जोखिमपूर्ण,

चौकी, जरी से रवाना होते अभियान दल के सदस्य

चुनौतीपूर्ण व आत्मघाती था। लद्दाख, करगिल, कश्मीर तथा जम्मू के अति संवेदनशील क्षेत्रों में 'हिमालय बचाओ' का बैनर लिए मोटर साईकिलों पर प्रदर्शन करना पृथकतावादी, अलगाववादी तथा आतंकवादी ताकतों को ललकारना था। लेह पहुंचते ही हमें मोटर साईकिलों पर लगाए पर्यावरण के सन्देश को दर्शाने वाली हरी झण्डियों को निकालने के लिए कहा गया। आगे खलसे नामक स्थान में पैट्रोल भरते हुए लोगों को यह कहते सुना कि "ये लोग मरने जा रहे हैं।" लेकिन दल के सदस्यों के मनोबल व साहस में कमी नहीं आई और आगे बढ़ते ही गए।

अगस्त 1990 को मैं, जब एस्कोर्ट्स खरदुंगला अभियान के सिलसिले में लद्दाख यात्रा पर था, तभी मैंने हिमालय की दयनीय स्थिति को देख कर दिल में यह ठान लिया था कि हिमालय को बचाने के लिए मुहिम चलाई जानी चाहिए। लोगों को जागरूक करना चाहिए। इसके बाद अगस्त 1992 को शिमला से लेह तक "हिमालयन ग्रीन पीस एक्सपीडीशन" के नाम से मोटरसाईकिलों में एक विशाल रैली निकाल कर लोगों को हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण व इसके महत्व बारे जागरूक करने के लिए अपील यात्रा शुरू की। इस अभियान को भी मैंने स्वयं संगठित किया, इसका नेतृत्व किया और इसे सफल बनाया।

5 जून 2003, ''विश्व पर्यावरण दिवस'' को मैंने विशेष अन्दाज़ में मनाने के लिए दो मास पूर्व ही सोच कर एक योजना बना कर रखी थी। "करगिल" देखने की इच्छा तो जब भारत पाकिस्तान के बीच अघोषित युद्ध हुआ था, तभी से मेरे दिल में जागी थी। इसलिए मुझे "कुल्लू से करगिल" तक मोटर साईकिल पर एक अभियान चलाने के लिए अपने पर्यावरण प्रेमी स्वाभाव के कारण "हिमालय बचाओ अभियान" को जन्म देना पड़ा। इसके लिए अवकाश वाले दिनों में, सुबह-शाम, देर रात तक काम करके मैंने अकेले ही बिना किसी की सहायता लिए पत्राचार, आकलन, ब्यौरा तथा आंकड़े एकत्रित करने की प्रक्रिया शीघ्र शुरू कर दी। मुझे हिमालयन मोटर साईकिल एक्सपीडीशन का अनुभव तो था ही, इसी आधार पर मैंने अपने तन-मन-धन से प्रयास किए। सर्वप्रथम "बजाज ऑटो लिमिटिड" का नाम मेरे ज़हन में आया। इस कम्पनी से मैंने एक दर्जन के करीब पत्राचार किए, फैक्स द्वारा, ई-मेल द्वारा व दूरभाष द्वारा। लेकिन बजाज कम्पनी ने एक शब्द नहीं बोला। कोई जवाब नहीं दिया। इस पत्राचार में मेरा एक बहुमूल्य मास समाप्त

दल को हरी झंडी दिखाते हुए उपायुक्त, कुल्लू

हो गया।

फिर मैंने भारतीय जीवन बीमा निगम से भी अनुरोध करने शुरू कर दिए। निगम ने भी कोई जवाब नहीं दिया। हिमाचल प्रदेश सरकार ने भी इस अभियान पर कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। अन्त में मैं मलाणा पावर कम्पनी, राष्ट्रीय पन विद्युत परियोजना निगम तथा कैच मिनरल वॉटर, रायसन के पास भिखारी की भांति भीख मांगने गया। मेरी दर्द भरी, करुणामयी व दु:ख भरी आवाज़ में केवल मलाणा

पावर कम्पनी ने हिमालय की पुकार को सुना। मलाणा पावर कम्पनी ने इस अभियान के लिए सात हज़ार रुपये की राशि दान के रूप में देकर मेरी हिम्मत को थोड़ी तसल्ली दी।

अब मैंने यह निर्णय कर लिया था कि दस हज़ार रुपये तक की राशि मैं स्वयं अपनी जेब से डालकर इस अभियान को अन्तिम रूप दे दूंगा। क्योंकि मैं, पत्राचार, फैक्स, ई-मेल दूरभाष, कम्प्युटराईज़ड टाईप वर्क तथा इधर-उधर कार दौड़ाने में करीब तीन हज़ार रुपये खर्च कर चुका था। इस अभियान में भाग लेने वाले कुल्लू तथा लाहुल के युवा कर्मचारियों ने भी मुझे संगठन प्रक्रिया में सहयोग नहीं दिया। कुछ साथी तो अन्त में अपनी जेब से पैसा खर्च होते देखकर अभियान से निकल गए। तीन चार साहसी युवाओं को छोड़कर सभी चाहते थे कि जेब से कोई धन खर्च न हो।

अन्त में मैंने अभियान को अन्तिम रूप दे दिया। इसमें भाग लेने वाले कुल 12 सदस्यों की सूची, अभियान के मुख्य प्रायोजक मलाणा पावर कम्पनी को दी गई। कैलाश नगर जन कल्याण एवम् पर्यावरण सुरक्षा समिति, ग्रीन पीस कॉलोनी ढालपुर ने आयोजक की भूमिका निभाते हुए तीन हज़ार रुपये दिए। न्यू विस्टास एअरटैल, गांधी नगर ने कैलाश नगर पर्यावरण सुरक्षा समिति को इस अभियान के लिए एक हज़ार एक रुपये की राषि भेंट की।

अभियान का शुभारम्भ

5 जून 2003, "विश्व पर्यावरण दिवस" के दिन 12 साहसी युवाओं का एक दल कुल्लू से करगिल तक एक अत्यन्त कठिन, दुर्गम, चुनौतीपूर्ण, जोखिमपूर्ण तथा आत्मघाती यात्रा के द्वारा हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण बारे जागरूकता का सन्देश लोगों तक पहुंचाने हेतु मोटर साईकिलों व जीप में रवाना हुए थे।

5 जून, 2003 को मलाणा पावर हाऊस (86 MW) के परिसर में पौध रोपण करने के बाद अभियान दल को माननीय जिलाधीश महोदय श्री आर.डी. नज़ीम (भा.प्र.से.) ने कुल्लू से हरी झण्डी दिखा कर रवाना किया।

कुल्लू से विलम्ब से प्रस्थान होने तथा मार्ग में रोहतांग के पास यातायात अवरुद्ध होने के कारण अभियान दल देर रात करीब 11 बजे केलंग पहुंचा। केलंग में होटल टषी देलेगस् ने अपने वायदे के

अभियान दल के सदस्य

मोटर साईकिल में

1. एन.जी. बौद्ध	दल नेता	न्यू बॉक्सर AT मोटर साईकिल, मॉडल जून 2003
2. तोप सिंह	उप नेता	बजाज चेतक स्कूटर, मॉडल 1989
3. सेस राम	यांत्रिकी विशेषज्ञ	बॉक्सर CT मोटर साईकिल, मॉडल दिसम्बर 2001
4. किशोर चन्द	दल सदस्य	YBX यामाहा मोटर साईकिल, मॉडल 1996
5. हेम राज	दल सदस्य	CBZ हीरो होण्डा मोटर साईकिल, मॉडल 1996
6. गिलू राम	दल सदस्य	SELECT-II वैस्पा स्कूटर, मॉडल दिसम्बर 2002

माहिन्द्रा बोलेरो कैम्पर जीप के सदस्य

7. डॉक्टर नरेश	दल चिकित्सक
8. लोबज़ंग गड़फा	दुपहिया सह–चालक
9. उरज्ञन	दुपहिया सह–चालक
10. नम्ज्ञल	कोशाध्यक्ष
11. ललित	कैमरा मैन
12. दिनेश	जीप चालक

श्रीनगर के शालीमार बाग में

अनुसार शानदार रात्रि भोज का आयोजन किया हुआ था। रात्रि भोज के बाद सभी सदस्यों को मैंने अपने केलंग स्थित आवास में ठहराया।

बर्फीले दुर्गम मार्ग पर दल के सदस्य

6 जून, 2003 का दिन, अभियान के लिए काफी कठिन व कष्टदायी रहा। हम लोगों को केलंग से ही कांग्रेस प्रत्याशी की विशाल चुनाव रैली की वजह से विलम्ब हो गया था। दोपहर के भोजन की जगह दारचा में दिन के 2 बजे हल्का सा चायपान लिया था। हम लोग जल्दी में थे क्योंकि आगे बारालाचा की सड़क में गलेशियर पिघलने से बाढ़ की भांति पानी चढ़ जाता है। इस भय के कारण हमने जल्दी प्रस्थान किया। बारालाचा भी हमने अत्यन्त कठिन अवस्था में पार किया। मोटर साईकिल तो आसानी से निकल रहे थे परन्तु स्कूटर पानी के बीच पत्थरों में फंस रहे थे। एक नाले में पानी काफी चढ़ा हुआ था और अति वेग से बह रहा था। यहां मोटर साईकिल तो आसानी से निकल गए लेकिन एक स्कूटर सवार सदस्य तोप सिंह ने भी मोटर साईकिल की भांति स्कूटर निकालने की कोशिश की और बीच में गिर गए। यदि इस बीच मैं पानी में छलांग लगाकर नहीं पहुंचता तो तोप सिंह को पानी में गम्भीर चोटें पहुंच सकती थीं। पानी तोप सिंह को स्कूटर के साथ दो-तीन मीटर तक बहा ले गया था। मैंने छलांग मारते ही स्कूटर पकड़ा और उतनी देर में एक दो सदस्य और बचाव के लिए पहुंच गए। तोपसिंह तो पानी से पूर्णतया भीग चुके थे, अत: हमें करीब आधा घण्टा रुकना पड़ा। गाड़ी से कपड़े निकाले गए और फिर आगे बढ़े।

जब बारालाचा के शिखर पर पहुंचे तो सूर्यास्त हो रहा था; समय 6 बज कर 45 मिनट हो गया था। इस दर्रे की ऊंचाई समुद्र तल से 16,500 फीट है। यहां बर्फ अभी तक शीतकाल की भांति जमी हुई थी। सड़क के दोनों ओर बर्फ के ढेर थे। यहां से आगे सरचु तक ढलानदार सड़क शुरू हो जाती है। सरचु में हमने एक खूबसूरत मैदान में कैम्पिंग की। हम लोग कैम्पिंग का सारा सामान ले कर चले थे। जो दल सदस्य जीप में थे वे लोग अभियान के नियमों के अनुसार कैम्पिंग करने तथा खाना बनाने में जुट गए। हम लोग हिमालय के पठार में खुले आसमान के नीचे पैट्रोमैक्स जला कर देर रात तक नाचते गाते रहे।

दिनांक 07.06.2003 सुबह पांच बजे ही मैंने सभी सदस्यों को जगाना शुरू कर दिया क्योंकि हमें आज हर हालत में लेह पहुंचना था। इसलिए सरचु से हमें जल्दी प्रस्थान करना था। यहां से लेह 256 कि.मी. की दूरी पर है और मार्ग में तीन दर्रो नाकीला 15,547', लाचुंगला 16,616', तथा तगलंगला 17,582' को पार करना पड़ता है। सरचु में नाश्ता और सामान दोबारा पैक करते-करते 8 बज गए। जब सरचु से निकल कर कुछ ही दूरी पर पहुंचे थे कि आगे सड़क में एक टैंकर खराब हो जाने की वजह से यातायात अवरुद्ध हुआ पाया। यहां हमें करीब दो घण्टे और लग गए और हमें लग रहा था कि अब तंगलंगला को पार नहीं कर पाएंगे। हमें पंग में ही डेरा जमाना पड़ेगा। नाकीला दर्रे पर हमारा एक सदस्य हाई एल्टीच्यूड सिकनेस का शिकार हो गया और स्कूटर पर चलते-चलते बेहोश होकर गिर पड़ा। हमारे दल चिकित्सक ने कुछ दवाइयां दीं और उसे जीप में बिठाया गया। जीप में सवार एक सह-चालक ने स्कूटर सम्भाला। हम लोग 2 बज कर 50 मिनट पर पंग पहुंच गए थे। यहां भोजन इत्यादि करने के बाद बीमार सदस्य को आगे जाने के लिए तैयार करने लगे। लेकिन हमारा साथी काफी गम्भीर हो गया था और उसे पंग में ही सेना के ट्रान्सिट अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। दो घण्टे तक उसे अस्पताल में उपचाराधीन रखा गया। बाद में डॉक्टर ने छुट्टी दे दी। इस प्रकार हमें रात को पंग में ही ठहरना पड़ा।

दिनांक 08.06.2003 को सवेरे 8 बजे पंग से लेह के लिए रवाना हुए। लेह पंग से 182 कि.मी. की दूरी पर है। विश्व के दूसरे सबसे ऊंचे यातायात दर्रे तंगलंगला 17,582 फीट में हमारे बीमार साथी की तबीयत और खराब हो गई। अत: जीप को जल्दी-जल्दी आगे भेज दिया गया और मोटर साईकिल सवार सदस्य तंगलंगला में फोटोग्राफी करते रहे। इस दर्रे में

शिवजी का एक भव्य मन्दिर है। सन् 1992 में हिमालयन ग्रीन पीस एक्सपीडीशन के दौरान यहां हिमांक परियोजना ग्रैफ के सौजन्य से मुफ्त चायपान व चिकित्सा सेवा प्रदान की जाती थी। इस दर्रे से लेह 105 कि.मी. दूर है और पहला गांव रूमसे 23 कि.मी. की दूरी पर है। यहां से रूमसे तक ढलानदार सड़क है इस दर्रे में बर्फ के कारण सड़क जमी होने से ट्रक, बस व टैंकर फंस रहे थे।

1 बज कर 30 मिनट पर हम लोग रूमसे पहुंचे, जहां एक होटल में हमारे जीप वाले सदस्य हमारा इन्तज़ार कर रहे थे। हमारे बीमार साथी की हालत में यहां अपने आप सुधार हो गया था, क्योंकि हम लोग 2,785 मीटर की ऊंचाई पर पहुंच गये थे। यहां चायपान करने के बाद आगे बढ़े। गया नामक गांव के पास पानी के चश्मे के साथ हमने दोपहर के भोजन के लिए कैम्प लगाया। यहां हमारे जीप वाले सदस्यों ने मिलजुल कर खाना बनाया और बाद में सभी सदस्यों ने स्नान भी किया। शीतल जल में स्नान करने के बाद हमने भोजन करने का खूब आनन्द लिया।

इसके बाद लेह के लिए रवाना हुए। लेह जाते-जाते उपशी नामक स्थान में हम लोगों ने ऐतिहासिक नदी सिन्धु के दर्शन किए और सिन्धु पार करके उपशी में यातायात पुलिस चौकी में लद्दाख प्रवेश के लिए हमें अपने-अपने पहचान पत्र, लाईसैंस तथा गाड़ियों के कागज़ात आदि दिखाने पड़े और रजिस्टर में दर्ज करवाए।

हमारे पास लेह पहुंचने के लिए समय काफी था। इसलिए हम लोग लद्दाख के सबसे पुराने व प्रसिद्ध "हिमस" गोम्पा के दर्शन करने गए। "हिमस" दर्शन के बाद मार्ग में "स्तोक" पैलेस भी गए। यहां से लेह का विहंगम दृश्य देखने का मज़ा ही कुछ और है।

करीब छः बजे हम लोग लेह पहुंचे, लेह पहुंचते ही सर्वप्रथम हम लोग पैट्रोल पम्प पर पैट्रोल भरवाने के लिए गए। यहां अधिक भीड़ होने की वजह से हमें काफी प्रतीक्षा करना पड़ी और इस बीच कुछ सात-आठ लोगों ने हमें घेर लिया। यह लोग हमारी गाड़ियों में पर्यावरण के सन्देष को दर्षाने वाली हरी झण्डियों पर एतराज़ कर रहे थे। बहरहाल काफी लम्बी बहस के बाद हमने जल में रह कर मगरमच्छ से बैर करना अच्छा न सोचते हुए सभी झण्डियों को निकाल दिया। इस कषमकष में हमारे कुछ साथी जो पहली बार लेह आए हुए थे, काफी आतंकित हो गए। बाद में हम लोग एक गेस्ट हाऊस में ठहरे। खाना खाने के बाद जब हम लोग आगे के कार्यक्रम के बारे में गुतगू कर रहे थे तो कुछ सदस्यों ने लेह से आगे ''करगिल'' की ओर न जाने और लेह से ही वापिस कुल्लू जाने का विचार रखा। अन्त में हमने यह फैंसला किया कि जो सदस्य अपनी इच्छा से करगिल जाने को तैयार न हो, वे लेह से ही कुल्लू वापिस लौट सकते हैं।

दिनांक 09.06.2003 की सुबह मौसम कुछ ठण्डा था। बादलों से घिरा हुआ होने पर लेह जून मास में एकदम शीतलहर की चपेट में आ गया था। आज हम केवल छः सदस्य, जो दुपहिया वाहनों पर सवार थे, अपने बाकी सदस्यों से बिछुड़ कर "करगिल" की ओर बढ़ रहे थे। हमें जहां अपने साथियों से बिछुड़ने का ग़म था, वहीं दूसरी ओर "करगिल" को देखने की इच्छा भी दोगुनी थी, क्योंकि हम लोग "करगिल" से केवल 230 कि.मी. की दूरी पर थे। उस समय हमारे दिलों में आतंक, ख़ौफ, डर कुछ भी नहीं था।

सन् 1995 में "होली हिमालयन दर्शन अभियान" "त्रिलोकनाथ से लामायुरू" के दौरान मैं लामायुरू तक पहले भी जा चुका था। बाकी तीन सदस्य भी "खलसे" व "अलची" तक जा चुके थे। दो नए सदस्य श्री तोप सिंह व श्री गिलु राम, जो स्कूटरों पर स्वार थे, हमारे साथ "करगिल" जाने को आतुर थे। इन दोनों में भी कोई आतंक व ख़ौफ का एहसास नहीं देखा गया।

सारा सामान जीप से निकाल कर जो अत्यन्त आवश्यक था, अपने-अपने दोपहिया वाहनों में बांध दिया गया। जीप को तो उसी दिन लेह से कुल्लू के लिए रवाना करना था और बाकी सदस्य जो करगिल नहीं आ रहे थे, उन्हें लेह में एक दो दिन घूम कर बस द्वारा कुल्लू वापिस आना था। ठीक 1 बजे हम लोग अपने साथियों को होटल में छोड़ कर उनसे विदा लेते हुए लेह से करगिल की ओर रवाना हुए।

कार्यक्रम के अनुसार हमें रात लामायुरू, जो लेह से 135 कि.मी. की दूरी पर है, में ठहरना था। अब हम लोगों को न जीप की और न ही जीप में सवार सदस्यों की चिन्ता थी। इसी लिए हम लोग 70-80 कि.मी. प्रति घण्टा की गति से लामायुरू की ओर बढ़ते गए। मार्ग में "खलसे" नामक स्थान में जब हम

लोग पैट्रोल भरवा रहे थे, तो वहां पर लोगों ने हमसे पूछा कि कहां जा रहे हो, हमारे एक सदस्य ने कहा की श्रीनगर होकर कुल्लू जा रहे हैं। ये लोग आपस मे फुसफुसाहट कर रहे थे कि ये सब मौत के मुंह में जा रहे हैं। साम्प्रदायिक विद्वेष से भरे शब्द सुनकर भी हम लोग शान्त रहे, हमारे लिए यह वक्त लड़ने-झगड़ने का नहीं था, क्योंकि हम लोग एक सुसंगठित अभियान पर थे। हम लोगों ने उनके शब्दों को एक कान से सुन कर दूसरे कान से बाहर निकाल दिया।

इसके बाद हम लोग अलची नामक स्थान में लद्दाख के एक और प्रसिद्ध गोम्पा के दर्शन के लिए लेह-श्रीनगर मुख्य मार्ग से लिंक मार्ग की ओर बढ़े। 4 कि.मी. की दूरी तय करने के बाद अलची नामक गांव आता है। इस गांव के बीच में बौद्धों का एक प्राचीन व विशाल गोम्पा है। अलची से चलने के बाद हम लोग करीब छः बजे लामायुरू पहुंचे। लामायुरू गांव भी काफी बड़ा है। यहां का बौद्ध विहार तो लद्दाख के सबसे प्राचीन गोम्पों में गिना जाता है। यहां गोम्पा न्यास के सौजन्य से यात्रियों व श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए आधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण एक भव्य सराय है, जहां हमने रात्रि विश्राम किया।

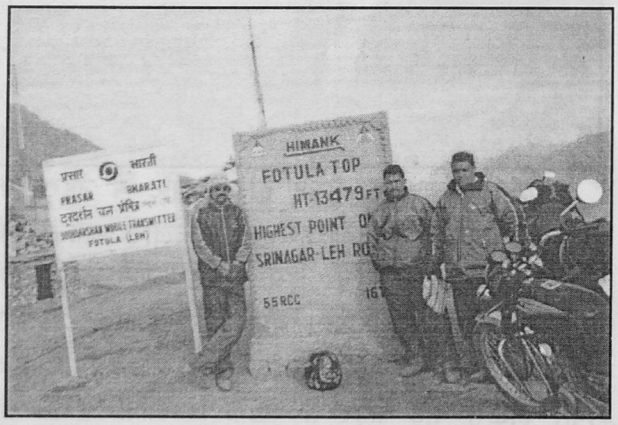

दिनांक 10.06.2003 को हम लोग सुबह लामायुरू गोम्पा दर्शन के बाद 7 बजे ही आगे के लिए रवाना हो गए। हम लोग करगिल जल्दी पहुंच कर आगे श्रीनगर जाने के लिए सर्वेक्षण करना चाहते थे क्योंकि यदि करगिल से हमें आगे श्रीनगर की यात्रा में कुछ जोखिम का आभास हो जाता तो हमें वापसी यात्रा लेह के लिए भी शुरू करनी थी। करगिल पहुंचते-पहंचते मार्ग में दो दर्रे फोतुला 13,479' तथा नामीकाला 12,198' के साथ-साथ अनेक गांव आते हैं। मार्ग में एक पुल पार करने के बाद सेना के जवानों की गश्त व जगह-जगह सघन जांच पड़ताल एकदम बढ़ जाती है।

दोपहर 1 बज कर 40 मिनट पर हम लोग करगिल पहुंच गए। करगिल को थोड़ी चढ़ाई से देखा तो अत्यन्त मनमोहक व आकर्षक लगा। बीच से एक नदी ज़ंस्कर पदम से आती है और करगिल शहर के साथ-साथ बहते हुए द्रास की ओर बढ़ जाती है।

करगिल में जम्मू कश्मीर बैंक के परिसर में गाड़ियों को पार्क करके हमने अपने अभियान के बैनर को दीवार पर लगाया और मुख्य बाज़ार में प्रदर्शन किया। लोगों का भारी हुजूम एकदम उमड़ पड़ा। हम से लोगों ने प्रदर्शन करने का मकसद पूछा और तफसील के साथ हमसे सारी जानकारी पूछी गई। सतर्कता ब्यूरो के दो अधिकारी भी आए और उन्होंने हमसे पूर्ण ब्यौरा लिया। हमने उनसे श्रीनगर जाने के बारे में सुझाव मांगे। उन्होंने हमें हरी झण्डी दे दी। इसके बाद 2 बज कर 15 मिनट पर हम लोग आगे बढ़े।

द्रास, करगिल ज़िले का एक काफी बड़ा उपमण्डल है। इस उपमण्डल स्थान में पहुंचते वक्त हमने मार्ग के नज़दीक-नज़दीक काफी बड़े-बड़े गांव देखे। हम लोग 3 बज कर 25 मिनट पर द्रास पहुंच गए। यहां का बाज़ार काफी बड़ा है, आबादी भी अधिक है। हमें तो यह 95 प्रतिशत मुस्लिम आबादी वाला शहर लगा। इस शहर में शराब, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू का पूर्णतया निषेध किया हुआ है। द्रास के उत्तर वाले ढलान व पहाड़ी के दूसरे छोर पर पाक-अधिकृत कश्मीर की सीमा पड़ती है। सुप्रसिद्ध "टाईगर हिल" भी द्रास के एकदम नज़दीक सामने पहाड़ी पर दिखाई देता है और दूसरी ओर तोलोलुंग पड़ता है।

द्रास में हरियाली काफी अधिक है। यहां पर डीज़ल जेनरेटर से विद्युत आपूर्ति की जाती है और

पूर्णतया नि:शुल्क प्रदान की जाती है। यह विद्युत आपूर्ति भारत सरकार की ओर से यहां के निवासियों के लिए एक विशेष आर्थिक पैकेज के तहत प्रदान की जाती है। हम लोग द्रास से आगे चलकर, जहां सेना व जम्मू कश्मीर पुलिस का सयुंक्त चैक-पोस्ट है, वहां तक जाना चाहते थे और रात को वहीं पर ठहरना चाहते थे, लेकिन पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि वहां पर रात्रि ठहरने के लिए उचित प्रबन्ध नहीं है। हमें सुबह 4 बजे इस चैक-पोस्ट से आगे निकलना था, क्योंकि आगे ज़ोजिला दर्रा सिंगल-वे होने के कारण दोनों ओर से समय निर्धारित किए जाते हैं। लेह से श्रीनगर जाने वाले सुबह 4 बजे से छ: बजे तक जा सकते हैं और उसके बाद फाटक बन्द कर दिया जाता है। वैसे ही दूसरी ओर से सोनमार्ग से थोड़ी आगे बैरियर लगा है जो दिन को 2 बजे के बाद शाम छ: बजे तक खुला रहता है। हमें रात द्रास में ही ठहरना पड़ा। द्रास में एक भव्य होटल में कमरा लेकर हमने सुबह-सुबह 2 बजे चलने का कार्यक्रम बनाया। रात को होटल में 1 बजे के बाद किसी भी सदस्य को नींद नहीं आई क्योंकि सामने वाली पहाड़ी से गोलाबारी की आवाज़ें आ रही थी और सारा होटल भूकम्प की भांति हिल रहा था, मगर हमारे दिलों में डर, खौफ बिल्कुल भी नहीं था।

दिनांक 11.06.2003 को द्रास से सुबह 2 बजकर 30 मिनट पर रवाना होने के बाद हम लोग 3 बजकर 30 मिनट पर चैक पोस्ट के पास पहुंच गए थे। यहां पर गाड़ियों की एक कि.मी. लम्बी लाइन लगी हुई थी। हम लोग दुपहिया वाहनों पर होने के कारण सबसे आगे पहुंच गए। यहां पर फिर अपनी-अपनी गाड़ियों की एन्ट्री करवाने के बाद हमें 4 बजे तक फाटक खुलने का इन्तज़ार करना पड़ा। ठीक चार बजे जैसे ही फाटक खुला हम लोग तेज़ी से सबसे आगे निकल गए।

लगभग 4 बज कर 45 मिनट पर हम लोग ज़ोजिला दर्रा पहुंच गए। अभी तक सुबह पूर्ण रूप से नहीं हुई थी। इस दर्रे की ऊंचाई 11,640' है। यहां बर्फ काफी मात्रा में थी, केवल सड़क मार्ग ही साफ था। ज़ोजिला के पास फिर एक चैक-पोस्ट लगा था। यहां पर हमने फिर अपने-अपने वाहन एन्टर करवाए और आगे बढ़ते गए। करीब एक घण्टे के बाद जब थोड़ी सी रोशनी हुई तो हम लोग अब एकदम तंग घाटी में तंग पहाड़ी सड़क पर उतराई में आ गए थे। थोड़ी दूर आगे चलने के बाद जब मैदानी हिस्सा आया तो सुबह हो गई थी और समय 6 बज कर 30 मिनट था। अब हमें ऐसा लग रहा था जैसे हम लोग सचमुच कुल्लू-मनाली पहुंच गए हों। जब पहले गांव सोनमार्ग पहुंचे तो सूर्य निकलने लगा था। यहां हमने चायपान करके गाड़ियों के साथ अपने आपको थोड़ा सा आराम दिया। यहां से श्रीनगर 85 कि.मी. की दूरी पर है। जैसे-जैसे हम लोग आगे बढ़ते गए सड़क के किनारे पर सेना के जवान 100-100 मीटर की दूरी पर तैनात हुए देखे गए। लगभग डेढ़ घण्टे तक की यात्रा करने के पश्चात एक स्थान "कंगन", जो श्रीनगर ज़िले के अधीन उपमण्डल है, में नाश्ता किया। यहां से श्रीनगर 45 कि.मी. की दूरी पर है। ज्यों-ज्यों श्रीनगर नज़दीक आ रहा था त्यों-त्यों घाटी खुलती जा रही थी। हम लोग करीब 12 बजे श्रीनगर पहुंच गये थे।

यहां पहुंचने पर हमने हाऊस बोट में ठहरने का विचार बनाया। शीघ्र ही हम लोग फलोरा हाऊस बोट ग्रुप के परिसर में पहुंचे। इस हाऊस बोट के मालिक के पास करीब चार हाऊस बोट थे। हमें बहुत ही कम दर पर केवल छ: सौ रुपये में पूरा हाऊस बोट मिल गया। हाऊस बोट बाहर से देखने पर उतना अच्छा नहीं लगा, परन्तु जब हम लोग हाऊस बोट के अन्दर गए तो हम दंग रह गये। सितारा होटल की भांति सजावट व साज़-सामान इत्यादि सजाया हुआ था। दो बहुत बड़े-बड़े अत्याधुनिक बैडरूम, एक डोरमेटरी, एक बहुत बड़ा ड्राइंग रूम तथा डाईनिंग रूम, किचन, पैन्ट्री तथा झील की ओर एक सुन्दर बाल्कनी थी, जिसे किसी महल की भांति सजाया हुआ था। हमें तो ऐसा लग रहा था जैसे हम किसी हाऊस बोट में न ठहरकर किसी फाईव स्टार होटल में ठहरे हुए हैं। हाऊस बोट मालिक ने हमें बताया कि कभी यह हाऊस बोट छ:

हज़ार रुपये तक की कीमत पर बुक होता था और आज यह स्थिति उत्पन्न हो गई है कि यह बड़ी मुश्किल से छः सौ रुपये किराए पर देना पड़ता है।

झील के किनारे हाऊस बोट में जब कोई ठहरता है तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वर्ग में बैठे हों। हम लोग नहा कर 2 बजे तक तैयार हो गए। कपड़े धोने के लिए धोबी को दिए। ठीक 2 बज कर 15 मिनट पर एक खूबसूरत शिकारा आया जिसका हमारे गाईड बशीर अहमद ने प्रबन्ध किया हुआ था। यह शिकारा भी हमें 500/- रुपये में समस्त श्रीनगर घूमने के लिए सांय 7 बजे तक मिल गया। शिकारा में हम छः सदस्यों के अलावा दो चप्पु चलाने वाले तथा हमारा गाईड था। जब झील के बीच से गुज़र रहे थे तो हमें एक स्वप्न की भांति प्रतीत हो रहा था। सर्वप्रथम हम लोग शालीमार गार्डन (मुगल बाग) गए। इस बाग में दुनियां के हर किस्म के फूल, पेड़ व घास देखने को मिलती है। उसके बाद डल झील की ओर बढ़े, जो श्रीनगर की सबसे बड़ी व सुन्दर झील है। कुल चार बड़ी-बड़ी झीलों के चारों ओर श्रीनगर फैला हुआ है। दूर से शंकराचार्य का मन्दिर भी देखा, लेकिन दर्शन नहीं कर पाए। मुख्य बाज़ार लाल चौक भी घूमे, कुछ सामान भी खरीदा। हमने यहां श्रीनगर में काफी पर्यटकों को घूमते हुए देखा। मेरे अपने विचार में श्रीनगर व कश्मीर की सैर ज़िन्दगी में एक बार अवश्य करनी चाहिए। यहां पर पहुंचने के बाद व्यक्ति सब कुछ भूल जाता है। शाम करीब 7 बज कर 15 मिनट पर हम लोग वापिस अपनी हाऊस बोट पर पहुंचे। कपड़े बदलकर फिर बाल्कनी में आए और झील से आने वाली ठण्डी हवाओं का आनन्द लेते रहे।

दिनांक 12.06.2003 को सुबह शानदार ब्रेकफास्ट के बाद हम लोग जम्मू की ओर रवाना हुए। जम्मू श्रीनगर से 272 कि.मी. की दूरी पर है। जम्मू चलते हुए हमने मार्ग में अनेक आकर्षक दृश्य देखे। एशिया की सबसे लम्बी यातायात सुरंग 2.715 कि.मी. जवाहर टनल को पार करके जब हिमाचल प्रदेश के लाहुल-स्पीति ज़िले से निकलने वाली चिनाब नदी को देखा तो बहुत अच्छा लगा। चिनाब नदी रामबन के पास झेलम से मिलती है। यहां एक सड़क डोडा, किश्तवाड़, किलाड़, लाहुल से भी आकर जुड़ती है। छोटे वाहनों के लिए मार्ग खुल चुका है। पठानकोट से लेह, इस मार्ग से भी वाया जम्मू, रामबन, किश्तवाड़, किलाड़, उदयपुर, केलंग होकर मनाली-लेह के साथ तांदी में मिल कर, जाया जा सकता हैं। लेकिन पठानकोट से लेह, वाया श्रीनगर से यह मार्ग 185 कि.मी. अधिक लम्बा पड़ता है।

शाम छः बजे हम लोग कटड़ा पहुंच गए। हमने यहां माता वैष्णो देवी के दर्शन करने थे। रात भर हम लोग दर्शन हेतु पैदल चलते रहे। सुबह 2 बजे वैष्णो देवी के दर्शन पाकर तथा भैरों बाबा के भी दर्शन लाभ लेकर 6 बजे तक होटल पहुंच गए। करीब दो घण्टे विश्राम करने के बाद कुल्लू की ओर रवाना हुए। मार्ग में हमें एक रात चामुण्डा ठहरना पड़ा, क्योंकि हमें यहां पर चामुण्डा माता के दर्शन करने थे।

दिनांक 14.06.2003 को हमने सुबह 9 बजे चामुण्डा माता के दर्शन करने के पश्चात् कुल्लू की ओर प्रस्थान किया। हमें 9 दिन तक घर से बाहर रह कर अब घर के समीप पहुंचने का सुखद एहसास हो रहा था। हिमालय के दुर्गम, बर्फीले व कच्चे मार्गों से मोटर साईकिल चलाकर पीठ, कमर, गर्दन तथा बाजुओं में दर्द का अहसास हो रहा था। घर के नज़दीक पहुंचकर यह दर्द बहुत ज़्यादा बढ़ गया था। थकावट भी पूरे शरीर में अपना पूरा आधिपत्य जमाए हुए थी। क्योंकि हम केवल रात विश्राम को छोड़कर नौ दिन तक लगातार चलते रहे थे।

दोपहर का भोजन हमने 2 बजे जोगिन्द्रनगर से आगे नारला में किया। यहां एक ढाबे में अति स्वादिष्ट खाना मिलता है। ब्रांस के फूल की चटनी व चने के लिए भी यह जगह मशहूर है। लगभग 5 बजकर 30 मिनट पर हम लोग हणोगी माता पहुंचे। यहां माता हणोगी के दर्शन करके करीब आधा घण्टा विश्राम किया।

7 बज कर 40 मिनट पर हम लोग कुल्लू पहुंचे। यहां पहुंचने पर शीशामाटी रिसोर्ट में हमारा कैलाश नगर, ग्रीन पीस कालोनी तथा चामुण्डा नगर वासियों ने भव्य स्वागत किया तथा हमारे सम्मान में यहां पर रात्रि भोज का आयोजन भी किया हुआ था। यहां हमने अपने अभियान की घटनाओं का वर्णन किया, जिसे सभी लोगों ने ध्यानपूर्वक सुना। मुख्य घटनाओं में हमारे बीमार साथियों में सबसे अधिक गम्भीर रूप से बीमार हुए सदस्य गिलू राम के बारे में सभी लोग हैरान थे। भगवान की दया से किसी देवीय शक्ति के चमत्कार से ही गिलू राम बचे। ऐसी

घटना से अभियान दल के बाकी सदस्यों का मनोबल भी टूट जाता है।

हिमालय में जब भी घूमने जाना हो, सदैव अभियान के रूप में जाना चाहिए और सुसंगठित व सुनियोजित ढंग से आयोजन करना चाहिए। इस अभियान में हमने जहां अनेक मुसीबतें झेलीं, अप्रिय होते क्षणों को सहन किया, नस्ली मतभेद के कटुतापूर्ण रिश्तों से दो चार होना पड़ा, वहीं दूसरी ओर हमने मोटर साईकिल सवारी का खूब आनन्द लिया और अपने उद्देश्य में कामयाब हुए। जिस मिशन पर हम लोग निकले थे, उसे हमने पूर्णतया सफल करके दिखा दिया। इस अभियान की सफतला का सारा श्रेय मैं दल के सभी सदस्यों को देता हूं, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी एकजुटता, बेहतर तालमेल व निडरता, उत्कृष्ट टीम भावना तथा अद्‌भुत साहस का परिचय दिया। मोटर साईकिल व स्कूटर की दृष्टि से बजाज ऑटो कम्पनी के दुपहिया वाहनों ने सबसे बेहतरीन प्रदर्शन दिये। मैंने जो बॉक्सर AT मोटर साईकिल, गलोबल मोटर्ज़ शमशी से 3000/- रुपये की विशेष रैली छूट पाकर खरीदी थी, इस 96 CC के चार स्ट्रोक इंजन ने कमाल का साथ दिया। मेरे साथी सदस्य कह रहे थे कि नया-नया इंजन हिमालय की चढ़ाई वाले, पानी वाले तथा बर्फ वाले रफ-टफ सड़कों में बैठ जाएगा। लेकिन यह मोटर साईकिल तो यामाहा आर एक्स 100 की तरह पावरफुल व मज़बूत सिद्ध हुआ। मैंने कच्चे व ऊबड़-खाबड़ सड़कों में टौप गियर पर इसके प्रदर्शन को बिल्कुल यामाहा की तरह देखा। श्रीनगर जम्मू सड़क में मेरी गाड़ी सबसे आगे 80-90 की गति से दौड़ रही थी। छः दुपहिया वाहनों में सबसे अच्छा फ्यूल एवरेज मेरी गाड़ी बॉक्सर AT ने 72 कि.मी. प्रति लीटर का दिया। इसके बाद बॉक्सर CT ने 68 कि.मी. प्रति लीटर से दूसरे स्थान पर रहा। हमने पूरे अभियान में जो यात्रा की, उसे मेरी बिल्कुल नई गाड़ी ने जिसे 5 जून, 2003 को ही शोरूम से निकाला था, कुल 1892 कि.मी. की बिल्कुल सही रीडिंग दी।

इस यात्रा में हमने नौ दिन में नौ ज़िलों का सफर करते हुए जिसमें कुल्लू, लाहुल-स्पीति, लद्दाख, करगिल, श्रीनगर, जम्मू, पठानकोट, कांगड़ा, मण्डी शामिल हैं, और आठ दर्रों को - रोहतांग (13,044'), बारालाचा (16,500'), नाकीला (15,547'), लाचुंगला (16,616'), तंगलंगला (17,582'), फोतुला (13,479'), नामीकाला (12,198'), ज़ोजिला (11,640') पार किया।

हमने सभी धर्मों का सम्मान किया। बौद्धों के गोम्पा, मुस्लिमों के मस्जिद व दरगाह तथा हिन्दुओं के मन्दिर, सभी के दर्शन किए।

अन्त में मैं एक बार फिर अपने सभी सदस्यों का इस अभियान को सफल बनाने के लिए धन्यवाद करता हूं तथा बधाई देता हूं । मलाणा पावर कम्पनी चौकी (जरी), ज़िला कुल्लू का भी मैं अत्यन्त आभारी हूं जिसने इस अभियान के महान उद्देश्य को सम्मान देते हुए 7000 रुपये की राशि दान करके अभियान को सफल बनाने में अहम भूमिका निभाई। टशि देलेगस् होटल केलंग के मालिक श्री टशि करपा का भी अत्यन्त आभारी हूं जिसने अपने वायदे के मुताबिक देर रात तक प्रतीक्षा करते हुए दल के सदस्यों के सम्मान में भव्य रात्रि भोज का आयोजन किया। श्री राहुल का मैं विशेष रूप से शुक्रिया अदा करना चाहता हूं जिसने बजाज अधिकृत डीलर के रूप में अपने शोरूम ग्लोबल मोटर्ज़, शमशी (कुल्लू) से मुझे नई मोटर साईकिल बॉक्सर AT खरीदने के लिए 3000 रुपये की विशेष छूट प्रदान की। इस महान् अभियान को आयोजित करने वाले कुल्लू ज़िले का एकमात्र पर्यावरण प्रेमी संगठन - कैलाश नगर जन कल्याण व पर्यावरण सुरक्षा समिति, ढालपुर ने इस अभियान को कुशलतापूर्वक आयोजित करके सफल बनाने में उल्लेखनीय सहयोग प्रदान किया। संगठन के इस महान् सहयोग, कुशल प्रबन्धन तथा सफल आयोजन को दल के सदस्य सदैव याद रखेंगे।

'हिमालय बचाओ' अभियान को कुल्लू से करगिल तक चला कर हमने देश में इस अभियान को आन्दोलित करने का सफल प्रयास किया है। हमें उम्मीद है कि देश के नौजवान, युवा शक्ति तथा युवा पीढ़ी, इस अभियान के नारे को सदैव बुलन्द रखेगी और कभी नहीं भूलेगी।

"युवा शक्ति के खौलते खून की कसम,
अब हिमालय को बचाएंगे हम।।
नौजवानो, तुम हमें बल दो, हम तुम्हें जल देंगे।"

अगले वर्ष इसी अभियान में कुल्लू से काठमाण्डू "हीरो होण्डा ट्रान्स एशिया मोटर साईकिल पीस रैली, जून 2004" में फिर मिलेंगे।

जय भारत! जय हिमालय!!

कुलूत जनपद में अप्सराओं और नागों का वर्चस्व

- तेजराम नेगी

पूर्व कथा -

"फूलरूपी वासुकिनाग द्वारा कमला का अपहरण कर अपने नागलोक के महल के लिए प्रस्थान तथा कमला के साथ गान्धर्व-विवाह। कमला द्वारा वासुकिनाग के वरदानस्वरूप गर्भ-धारण करना तथा नागलोक से अपने माता-पिता के घर 'गोशाल' गाँव लौट आना तथा अपने अपहरण के बारे में पूर्ण वृत्तान्त सुनाना।"

तीसरी कड़ी

जब वासुकिनाग ने अपने तपोबल से कमला को उसके माता-पिता के गाँव गोशाल के निकट से बहने वाली विपाशा नदी के किनारे पर उतार दिया तो उसे ऐसा आभास हुआ कि मानो वह गहरी नींद से जाग रही हो, उसे स्मरण हो आया कि उसका तो वासुकिनाग ने सौर-गाँव के सरोवर से अपहरण किया था और उससे गान्धर्व-विवाह किया था वासुकि-नाग के साथ व्यतीत किया हुआ जीवन का एक-एक पल चलचित्र की भान्ति उसके स्मृति पटल पर उभरने लगा। वासुकिनाग उसे बहुत चाहने लगा था। वह मुझे अपने से दूर नहीं करना चाहता था, मैंने ही उसे अपने माता-पिता के घर आने के लिए विवश किया था। वे मुझे नाग लोक से इस मृत्यु-लोक में नहीं भेजना चाहते थे। विदाई के समय एक प्रेमभरे आग्रह से उन्होंने एक चेतावनी भी दी थी कि तेरे गर्भ से अठारा नागों का अवतार होगा, उनकी देखभाल अच्छी तरह करते रहना। ये सब घटनाएं उसे सचमुच ही स्वप्न की भान्ति लग रही थीं।

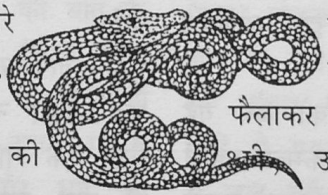

सपनों की दुनियां से जाग कर जब उसने अपने चारों ओर देखा तो उषा की धूमिल लाली इस क्षेत्र के उच्च हिम-शिखरों पर बिखरी हुई थी। हिम-शिखरों की सुखद गोद में सावन-भादों की हरियाली अपने पूर्ण यौवन से बिछी हुई थी। गोशाल गाँव के चारों ओर के परिवेश एवं बहार ने मानो एक दुल्हन का रूप धारण किया हुआ था। इस दुल्हन ने भी सोचा होगा कि गोशाल गाँव की 'धी' अपने ससुराल नागलोक से अपने 'पेउके' (मायके) आ रही है, अत: मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपनी 'धी' का स्वागत करूँ। कमला भी इस दुल्हन का दिव्य और भव्य रूप देखकर अपने पिया के बिछुड़ने का दु:ख भूल कर इसका अप्रतिम सौन्दर्य निहारने में ही तत्पर हो गई।

प्र.ति के इस सुषमा भण्डार को अपने अतृप्त नयनों में भरते भरते जब उसकी दृष्टि अपने मायके के गाँव 'गोशाल' पर पड़ी तो उसकी प्रसन्नता का कोई पारावार न था। उसकी आंखों में प्रसन्नता के आंसू झिलमिलाने लगे। उसका गोशाल गाँव जो हरे भरे पर्वत की सुखद गोद में दिखाई दे रहा था, मानो प्र.ति-सुन्दरी अपने आंचल से इस गाँव को छिपाने का यत्न कर रही हो। उसकी खोजी निगाहें उन स्थानों पर भी जा कर टकराईं जहां उसके सुकुमार पाँव थिरकते रहते थे, ठोकरें खाते थे, दौड़ते और भागते थे।

उसे स्मरण होने लगा जब वह बचपन और किशोर वय:संधि अवस्था की थी, तब वह अपने इस गाँव के उत्तर-पश्चिम में ढलानदार चरागाहों पर अपनी भेड़-बकरियां चराने हेतु अपनी सहेलियों के साथ जाया करती थी।

बचपन की स्मृतियों की माला पिरोते पिरोते जब वह अपने माता-पिता के घर के निकट पहुँची तो उसे अपनी मां के दर्शन इस घर के खलिहान में ही हो ग ए जहां उसकी मां हरे घास के बोझे (गट्ठर) को खोल कर अपने खलिहान में धूप में सुखाने हेतु घास को छितराकर तथा फैलाकर रख रही थी। वह अपने काम में लगी हुई उसने अपनी बेटी कमला को घर के खलिहान के निकट पहुँचती हुई नहीं देखा था। कमला ने दूर से ही अपनी मां को पहचाना तथा वहीं से ही अम्मा कहकर आवाज़ दी और दौड़कर मां के गले लिपट गई। कुछ क्षण तक वे दोनो मां-बेटी इसी अवस्था में एक दूसरे को अपनी छाती से चिपकाए रहीं और रो-रोकर अपने दिल का गुबार आँसुओं के रूप में बाहर निकालती रहीं और बहुमूल्य अश्रुधारा से एक दूसरे को भिगोती रहीं। कमला की माता अचानक अपनी बच्ची को अपने सामने पाकर अचम्भित सी रह गई थी।

बिछुड़े हुए दिल जब अचानक मिल जाएं तो हँसना और रोना एक साथ हो जाता है। ठीक यही अवस्था उन दोनों मां-बेटियों की हो रही थी। फिर मां ने कमला को साथ लिया तथा उसे अपने शयन-कक्ष की ओर ले गई। अन्दर आकर कमला ने कहा, "अम्मा! मुझे कुछ देर आराम कर लेने दो जिससे मैं अपनी उफनती हुई भावनाओं को शान्त कर सकूँ। फिर मैं आदि से अन्त तक पूरी कहानी बता दूंगी,

कृपया मुझे एक ठण्डा पानी का गिलास पिलाओ।" कमला ने पानी का पूरा गिलास गटक लिया और आंखें बन्द करके एक शय्या पर लेट गई। इस समय कमरे में मां-बेटी के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। उसकी मां इसी शय्या के एक ओर बैठ कर कमला के चेहरे को बड़े ध्यान से देखने लगी। कमला ने फिर कहा, "अम्मा! ज़रा इस कमरे का द्वार अन्दर से बन्द कर देना ताकि मैं शान्ति से आदि से अन्त तक पूरी रहस्य और रोमांच से भरपूर कहानी सुना सकूँ।"

तन और मन कुछ शान्त हो जाने के पश्चात कमला ने फिर अपनी प्रणय-कथा आदि से अन्त तक सुना दी।इस कथा को सुनने के पश्चात मन कुछ शान्त हो जाने पर कमला की मां ने कहा, "बेटी! अब तुम कुछ देर आराम करो, मैं अधूरा पड़ा हुआ काम निबटा लूँ, जैसे कि तुम्हें पता है कि आजकल हमारे गाँव में 'शौयरी-उत्सव' बड़े धूमधाम से मनाया जा रहा है और घर में गत-सांध्य वेला से ही विशेष अतिथि और तेरी सखी-सहेलियां भी आई हुई हैं,मैं उनके लिए कुछ भोजन की व्यवस्था करूँ तब तक तुम अपनी सखी-सहेलियों से अपने दु:ख-सुख का आदान-प्रदान करो।" इतना कहकर वह द्वार खोलकर अपने अन्य कार्य में व्यस्त हो गई।

मेले में आई हुई सखी-सहेलियों को जब यह पता चला अभी अभी घर में लापता हुई कमला पहुँची है तो उन्होंने अपना-अपना काम अधूरा छोड़कर उसके कमरे में आकर धावा बोल दिया और कमला से आलिंगन हेतु होड़ सी लगा दी। उसने अपनी सहेलियों के साथ सारे गाँव के घरों में घूम-घूम कर 'शैयरी-साज़ा' और शौयरी उत्सव देखकर अपने मन की सारी अगली-पिछली भड़ास निकाल दी। शौयरी-मेला समाप्त हो जाने के पश्चात सारे अतिथि और सखी-सहेलियां अपने अपने घरों को चली गईं। कमला भी अपने माता-पिताके काममें हाथ बटाने लगी और गत-जीवन के बारे में अधिक सोच-विचार करना छोड़ दिया।

कुछ दिन गोशाल गाँव में व्यतीत करने के पश्चात उसने अपनी मां से कहा, "अम्मा! अब मैं कुछ दिनों के लिए अपने नाना-नानी के घर 'सौर-गाँव' जाना चाहती हूँ। वे भी मेरे वियोग में बहुत दु:खी हो रहे होंगे।" कमला की माता ने एक अन्य सहायक के साथ उसे सौर-गाँव भेज दिया। नाना-नानी के घर पहुँचकर वह उनके गले लगकर बहुत रोई तथा अपनी सारी आपबीती सुनाई और नाना-नानी के घर के काम में सहायता देने लगी।

कुछ दिन इसी प्रकार बीत जाने पर उसने अपने गर्भ में कुछ हलचल अनुभव की, तब उसने अपनी नानी से नागराज-वासुकि के कथन का सारा वृतान्त सुनाकर कहा, "मेरे उदर से अठारा नागों की उत्पत्ति होगी और उनको रखने एवं पालन-पोषण के लिए एक मिट्टी का बड़ा सा घड़ा 'आली कुम्हार' से बनवाना पड़ेगा परन्तु उस घड़े को धूप की आंच में सुखाकर बनाना होगा आग की आंच पर नहीं।" नानी ने एक आदमी को उस कुम्हार को बुलाने हेतु भेज दिया। जब वह कुम्हार उनके घर पहुँचा, तब कमला ने सारी बातें उसे समझा कर निश्चित तिथि पर घड़ा तैयार कर लाने के लिए कह दिया। निश्चित तिथि पर कुम्हार ने उसके आदेशानुसार ठीक वैसा ही घड़ा (भाँदल) बनाकर उनके घर पहुँचा दिया। समय आने पर कमला ने सचमुच ही 'अठारा नाग-पुत्रों' को जन्म दिया।फिर उन नाग-पुत्रों को उस भांदल में रख कर अपनी नानी से कहा, ".पया इस भांदल को मेरे माता-पिता के घर गोशाल गांव में शीघ्रातिशीघ्र पहंचाने का प्रबन्ध करें।"

तत्पश्चात कमला के नाना-नानी ने इस भांदल को जिसमें नाग भरे हुए थे, गोशाल में पहुंचाने के लिए एक भार-वाहक का प्रबन्ध किया। मार्ग में एक दो नाग उस भांदल से बाहर निकल भागे और आस-पास के गांव के सरोवरों में जाकर छिप गए। (इन बिछुड़े हुए नागों का वर्णन अगली कड़ियों में किया जाएगा)।

भार-वाहक और कमला जब भांदल को लेकर अपने माता-पिता के घर गोशाल गांव पहुंचे तो कमला की मां ने जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि से उस भांदल की ओर देखा। कमला ने धीरे से अपनी मां को सब वृत्तान्त सुनाया और कहा, "इस भांदल में अठारा नाग पुत्र हैं, इनके स्वागत के लिए एक धड़छ में बैठर-धूप जलाकर लाओ, वासुकिनाग और उनके नाग-पुत्रों का पूजन करके इस घर के किसी कमरे में इनकी स्थापना करो। कमला की मां ने इन नागों का विधिवत् पूजन करके एक कमरे के कोने में स्थापना कर दी। तत्पश्चात प्रतिदिन प्रात: और सांय 'धड़छ' में आग के कुछ शोले डाल कर तथा उसके ऊपर 'बेठर-धूप' रख कर उन नाग-पुत्रों की पूजा करने लगी और उसके बाद उन्हें दूध पिलाया करती। नाग-पूजा की यह

विधि-प्रक्रिया प्रतिदिन ही निभानी पड़ती थी। इस प्रकार इन का पालन-पोषण करते हुए बहुत सा समय बीत गया और इनका शारीरिक आकार भी बढ़ता गया। इस भाँदल का मुख सदैव ढककर रखा जाता था।यह नाग भाँदल से बाहर निकलने के लिए छटपटाते रहते थे। न जाने इन नाग-पुत्रों को कब तक इस भाँदल में बन्द करके रखा जाता, शायद इस बात का ज्ञान नागाधिराज वासुकि एवं उसकी कमला को ही होता, परन्तु विधि के विधान-कर्त्ता को तो सब कुछ ज्ञात था कि भविष्य में क्या होने जा रहा है।

इस संसार का प्राणी सोचता कुछ है मगर होता कुछ और ही है। ठीक भी है, मानव का कर्त्तव्य है अपने परिवार के प्रति, समाज के प्रति और अपने देश के प्रति सार्थक, रक्षात्मक एवं रचनात्मक सोच अपनाकर उनके विकास हेतु सजग रहकर कार्य करना। परन्तु फलकी प्राप्ति तो विधि के अधीन है। विधि ने जो चक्कर चलाना है वह चलकर ही रहता है उसका न तो किसी को पता होता है और ना ही इसको रोकने की किसी में सामर्थ्य है।

विधि की विडंबना देखिए, यही चक्कर इन अठारा नाग-पुत्रों पर भी चला। एक दिन की बात है, कमला किसी विशेष कार्यवश प्रात: ही किसी अन्य स्थान पर चली गई। अपनी अनुपस्थिति में उन नागों की पूजा एवं दूध पिलाने के लिए उसने अपनी मां से कहा, "अम्मा जी! जब आप दूध और धूप का 'धड़छ' (धूपदान) लेकर इन नागों की पूजा हेतु इनके निकट जाओगी तो इनसे डरना नहीं, नि:सन्देह इनका रूप व स्वरूप नागों की भांति है परन्तु इनका स्वभाव देवताओं के समान है। इनका स्वभाव दँश देना नहीं है, ये नाग-पुत्र वासुकिनाग के अंश से अवतरित हुए हैं और इस हिमालयांचल देव-भूमि की रक्षा एवं कल्याण हेतु इनका अवतरण हुआ है। अत: इनसे भय कभी मत करना।

इनकी पूजा की विधि इस प्रकार है,सर्वप्रथम भाँदल का ढक्कन खोले बिना, धूप वाला 'धड़छ' भाँदल के मुख के चारों ओर घुमाकर और हाथ जोड़कर नीचे रख देना, तत्पश्चात भाँदल का ढक्कन खोलकर किसी चौड़े वर्तन में दूध डाल कर इन्हें दूध पिलाना और भाँदल का मुख फिर वैसा ही बन्द कर देना। इस प्रकार समझा कर कमला अपने काम से बाहर चली गई।

कमला के जाने के बाद उसकी माता ने वैसा ही काम करना आरम्भ किया, उसने एक बड़ा सा धड़छ (धूपदान) लिया, उसमें आग के धधकते हुए शोले डाल कर फिर उसके ऊपर 'बेठर-धूप' डाला तथा दूसरे हाथ में दूध का बर्तन लेकर उस भाँदल के निकट गई और धूप देने से पूर्व भाँदल का ढक्कन खोल दिया। अत: भूख से व्याकुल उन भयंकर आकार वाले नागों ने जीभ लपलपाते हुए अपना अपना सिर भाँदल के मुख के बाहर निकाल दिया। उनका ऐसा भयँकर-रूप देखकर उसका सम्पूर्ण शरीर और धड़छ वाला हाथ कांप उठा, परिणाम-स्वरूप धूप और आग के शोलों से भरपूर धड़छ नागों के सिरों पर उलट गया और वे आग के शोले भाँदल के भीतर तक फैल गए और वे आग के शोले नागों की दर्द भरी फूँकार से और भी भड़क उठे और वे सारे नाग बाहर निकलने के लिए भांदल के अन्दर ही अन्दर तड़पने लगे और अपनी अपनी शक्ति से उस भांदल को तोड़कर बाहर निकलने का प्रयास करने लगे। क्योंकि उस भांदल का मुख अत्यन्त संकरा था। इस प्रयत्न में सर्वप्रथम धूमल नामके एक नाग ने, जिसके सिर का आकार अपेक्षा.त कुछ बड़ा था, भांदल का 'वील' (मुख) तोड़कर बाहर निकला जिससे वह 'वील' उस नाग के गले में ही अटक कर रह गया। अन्य नाग भी भांदल के मध्य में छेद डालकर भाग निकले। इनमें से एक नाग ऐसा भी था जिसकी आंखें आग से जल गई थी वह गोशाल गाँव से बाहर न भाग सका और वह उसी गांव में ठहर गया और कांणा-नाग के नाम से उसकी मान्यता हो गई। एक नाग जो भांदल के सबसे निचले तल में था,आग से कुछ अधिक जलने के कारण भांदल के तल को फोड़ कर अपनी जलन-शमन हेतु निकट से बहती हुई विपाशा नदी की शीतल-जलधारा में डुबकी लगाई और नदी की तेज़ जल-धारा में ही मूर्छित हो गया। यही नाग 'काली-नाग' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यही नाग विपाशा की नदी धारा में बहता हुआ बन्दरोल गांव के सामने इस नदी के किनारे पर आकर अटका और यहीं आकर उसकी मूर्छा टूटी और पूर्ण स्वस्थ होकर एक बड़े से पेड़ के नीचे बैठकर विश्राम करने लगा,फिर उसे बड़े ज़ोर की भूख सताने लगी और अपनी भूख मिटाने के लिए वह बन्दरोल गांव की ओर चल पड़ा।

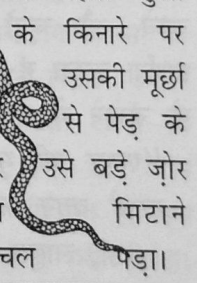

क्रमश:..... (अगले अंक में देखिए, काली-नाग की भूख-शमन की अनोखी गतिविधियां)

लाहुल व स्पीति का इतिहास

- शिव चन्द ठाकुर

"यूनान मिस्र रोमॉ मिट गए सारे जहां से,
लेकिन बाकि है अभी तक निशां हमारा।"

लाहुल स्पीति प्याली के आकार की घाटी, दुर्गम घाटी, नदी, नालों, ग्लेशियरों से घिरा हुआ प्रकृति के खिलाफ संघर्ष करने वालों की अनूठी घाटी है। रोहतांग दर्रा और कुंज़ोम जोत भारी हिमपात और कड़ाके की सर्दी से बाकी दुनियां से छः महीने के लिए यातायात के लिए बिल्कुल बन्द हो जाता है।

परन्तु भौगोलिक स्थिति प्राचीन परम्पराओं, सुरक्षा के हिसाब से इस घाटी का एक गौरवपूर्ण और महत्वपूर्ण स्थान है। इस ज़िले की सरहद एक तरफ सुर्खचीन के तिब्बत और दूसरी तरफ लद्दाख कश्मीर से जा मिलती है। लाहुल-स्पीति का अपना कोई खास लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है। मैंने खोज तो किया कि लाहुल-स्पीति के बारे ठोस सबूत हमारे पूर्वजों के बारे, इलाके के बारे जानकारी मिले, परन्तु मुझे निराशा ही मिली। चुनाँचे मैंने अपने मज़मून के उनमान के मुताबिक लाहुल-स्पीति को तीन हिस्सों मे बांट कर, यानि 1950 से पहले का लाहुल-स्पीति, 1950 से 2100 तक की लाहुल-स्पीति और 2100 से 2200 तक के लाहुल-स्पीति के इतिहास, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास के बारे अपनी खोज और कल्पना के मुताबिक पाठकों के सामने इस लेख के ज़रिए पेश करूं और कुछ विदेशी लेखकों के लेख व रोज़नामचों (= डायरी) की पढ़ाई के बाद सही रिपोर्ट पेश कर सकूं, ऐसी कोशिश रहेगी।

हिमाचल के आंचल में बसे लाहुल-स्पीति का अतीत, वर्तमान व भविष्य! वैसे लाहुल मेरी जन्म भूमि है। इसकी मिट्टी के कण-कण से मुझे प्यार है। यहां के लागों से मुझे प्यार है। इस पसमांदा और पिछड़े इलाके के विकास के लिए मेरा दिलोदिमाग सदा सोच विचार में डूबा रहता है। यहां के नौजवान, मर्द, औरतें, बच्चे, और बूढ़ों के लिए मैं भगवान बुद्ध से सदा प्रार्थना करता हूं कि ये लोग मौजूदा तकनीकी विज्ञान के ज़माने में तरक्की के रास्ते पर सदा अग्रसर रहें।

"पत्थर की मूर्ति में समझा तू खुदा है,
खाके वतन का हर ज़र्रा मुझे प्यारा है"।

हां, लाहुल-स्पीति का अतीत अंधेरे में छुपा रहा, इसका इतिहास लिखित रूप में कोई नहीं है। फिर भी मैं इस खोज में हूं कि हमारे पूर्वज कहां से आए, किन लोगों, ज़ात, बिरादरी, मज़हब से वास्ता रखते हैं। लाहुल प्यालीनुमा आकर की घाटी, हिमालय पर्वत श्रृंखला से निकलने वाले नदी नाले, चन्द्रभागा दरिया, ग्लेशियरों, गोम्पों, मन्दिरों, और प्रकृति के खिलाफ संधर्ष करने वालों की अनोखी घाटी है।

2000 साल पहले यहां मूल जाति के लोग रहते थे। जिनको मुंडा जाति कहा जाता था। ये लोग शायद बंगाल, मध्य एशिया या मंगोलिया से आए थे। कुछ लोगों का ख्याल है कि खोखसर, सिसू, तेलिंग गांवों में स्पीति और तिब्बत के लोग आकर बसे हैं। तोद घाटी में लद्दाख ज़ंस्कर के लोग आकर बसे हैं। क्योंकि भाषा, रीति-रिवाज़, रहन-सहन इनसे मिलती जुलती है। गाहर में दाहनु नस्ल के लोग और करगिल-अस्करदो बगैरा इलाके से आकर बसे हैं। पटन घाटी में स्वङ्ला, बौद्ध चम्बा और कश्मीर से आकर बसे हैं। ये सब विभिन्न मत हैं। चांण जो असली आर्य नस्ल के लगते हैं राजस्थान से आकर बसे हैं। बहरहाल कुछ बड़े लेखक कहते हैं, जिनका ज़िक्र मैं निम्नलिखित शब्दों में कर रहा हूं। 1861-62 में श्री जे०बी०ल्याल्ल ने कुल्लू और लाहुल-स्पीति का बन्दोवस्त किया। 1890 में श्री डायके ने और 1910-12 में कोल्ड स्टीम ने बन्दोवस्त किया। और इन सबकी रिपोर्टें प्रकाशित होती रहीं। परन्तु जहां तक ऐतिहासिक तत्वों का सम्बन्ध है उन सब ने जनरल कनिंघम को ही प्राधिकारी माना है। 1869-71 में कैप्टन एच.एफ. हरकूर्ट कुल्लू के सहायक कमिश्नर रहे। मालूम होता है कि उन्होंने कुल्लू और लाहुल-स्पीति की काफी ऐतिहासिक छानबीन की। उन्होंने एक किताब "डिट्रिक्टस ऑफ कुलू, लाहुल एण्ड स्पीति" लिखी थी। लाहुल-स्पीति का इतिहास लिखने के लिए उन्होंने काफी सामग्री इकट्ठा की। लेकिन जीवन ने उनका साथ न दिया। उनकी इच्छानुसार वह ऐतिहासिक पत्र डॉक्टर वॉगल को दिए गए, जिन्होंने उनकी सहायता से अपनी पुस्तक "हिस्ट्री ऑफ पञ्जाब हिल स्टैटस" लिखी। 1911-12 को ए०एच० फ्रैंक ने अपनी किताब "एण्टीक्विटीज ऑफ तिब्बत" लिखकर लाहुल-स्पीति का इतिहास लिखने के लिए कुछ सामग्री पेश की। वर्तमान समय में श्री एम०एस० रंधावा,

आइ०सी०एस० ने लाहुल-स्पीति के लोकगीत पर एक किताब लिखी है। एक और किताब श्री गोपाल दास खोसला सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश, पंजाब हाईकोर्ट ने 'हिमालयन सर्वे' किताब लिखी। इसमें लाहुल-स्पीति की यात्रा का वर्णन किया है।

सारे भारत वर्ष पर विजय पाने के बाद आखिर में अंग्रेज़ 1846 में लाहुल-स्पीति आए। पहले 1840 से 1846 तक सिक्खों के लूटमार का शिकार होते थे। जिसे हम सिंगों के राज के नाम से याद करते हैं। उन दिनों लाहुल में बेगार प्रथा प्रचलित थी। केलंग से रामशिला कुल्लू तक एक मज़दूर को केवल आठ आने दिया जाता था। जबकि कुल्लू से केलंग 46 मील का फासला है। वह भी दुर्गम घाटी, सड़कों की खस्ता हालत और रोहतांग दर्रा जिसे मौत का दर्रा कहते हैं, क्रॉस करके कई दिनों के बाद पहुंचते थे। आठवीं सदी में गुरु रिम्बोछे (पद्म सम्भव) ने लाहुल-स्पीति की यात्रा के बाद बौद्ध धर्म का प्रचार प्रभावशाली ढंग से किया। इन सैंकड़ों सालों में लाहुल-स्पीति के लोगों में क्रान्ति आई हो, राज बदले हों, जैसे लाहौल-स्पीति में कुल्लू का राज, लद्दाखी राज, चम्बा राज, सिक्खों और अंग्रेज़ों के शासन में रहे हों, जो कुछ भी हुआ, इन एतिहासिक घटनाओं पर मैं आगे चल कर कुछ विस्तार के साथ पाठकों के सामने चर्चा करूंगा। परन्तु इन तमाम घटना चक्रों के होते हुए भी यह इलाका लाहुल-स्पीति वैसा ही ज़िन्दा रहा। पता नहीं कब से यहां के लोगों ने इसे यानि लाहुल को गर्जा, खंडों लिङ देश के नाम से पुकारा। परिवर्तन और क्रान्तियों के दौर खत्म हुए। लोगों की अनुश्रुतियां मिट नहीं गई। राज बदले, साम्राज्य बदले पर जनता के विचार व विश्वास में और परम्पराओं में कोई परिवर्तन नहीं आया। यह इलाका हर हालत में सदा खंडोलिङ व लाहुल देवताओं की भूमि कहलाएगा।

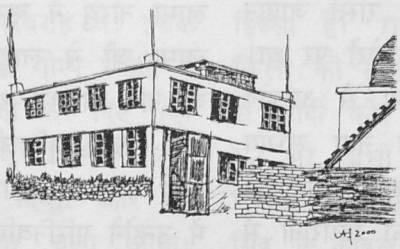

उत्तर भारत में हिमाचल प्रदेश के इन्तहाई शुमाल में जहां कड़ाके की सर्दी, भारी हिमपात, रोहतांग दर्रे की क्रूर हवाएं लाहुल को बाकी दुनियां से छः-सात महीने के लिए बिल्कुल जुदा कर देती हैं। परन्तु अपनी भौगोलिक स्थिति, प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं, सुरक्षा व ऐतिहासिकता की दृष्टि से एक गौरवपूर्ण स्थान रखता है। यह पावन घाटी जिसे तिब्बती भाषा में गरजा खंडोलिङ यानि देवताओं और शूरवीरों की भूमि के नाम से याद किया जाता है, असलियत यही है कि हर युग में, हर दौर में, हर ज़माने में महापुरुष यहां आए। उन्हें यहां प्यार व शान्ति मिली तथा साथ ही शक्ति भी मिली, जिसे पाकर संसार की भलाई के लिए काम किया। पाण्डव भी आखरी उम्र में यहां आए। रोहतांग दर्रा पार करके किश्तवाड़ और कश्मीर गए। कहावत है जब पाण्डव अपने आखरी दिनों में हिमालय की गोद में समाने के लिए आए तो जगतसुख पहुंचकर माता कुन्ती ने विचार प्रकट किया कि वह आगे नहीं आएगी और यहां शादी करने का विचार रखती है। आखिरकार पाण्डव रोहतांग जोत की तरफ आगे चलने के लिए बढ़े। रोहतांग की चढ़ाई व थकावट से चूर होकर माता कुन्ती ने आगे चलने से इन्कार किया।

कहते हैं, भीम जो सैंकड़ों हाथियों की ताकत रखता था अपने गुर्ज से रटांग दर्रे पर वार किया और मढ़ी तक नीचा कर दिया। दूसरा गुर्ज मारना ही चाहता था कि माता कुन्ती ने मना किया कि यदि रटांग दर्रा ध्वस्त हो जाए तो लाहुल-पांगी के लोगों का चालाक और होशियार लोग शोषण करेंगे। भीम ने गुर्ज मारना बन्द किया। काश 2-3 गुर्ज भीम जी और मारते तो रटांग का किस्सा ही हम सबके लिए खत्म हो जाता। आज रोहतांग वाहिद रुकावट है, जैसे मैं कह चुका हूं, कड़ाके की सर्दी, भारी हिमापात, ऑक्सीजन की कमी के होते हुए भी लाहुल के लोग छः-सात महीने एस्कीमोज़ की तरह ज़िन्दगी बसर करते हैं। 1953 में पंजाब के मुख्यमन्त्री भीम सैन केलंग आए थे। उनको लाहु-स्पीति पीपल्ज़ एसोसिएशन के नुमाइंदों ने अपने सम्बोधन में 20वीं सदी के भीम के खिताब से नवाज़ा था और प्रार्थना की कि आप शक्तिशाली गुर्ज मारें और रटांग में सुरंग निकालें। 15 अगस्त, 1984 को स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी जी ने वायदा किया था कि रटांग मे सुरंग का बन्दोवस्त वह कर लेंगी। उन्होंने अपने भाषण में इस सुरंग को निकालने और लोगों को आश्वस्त करते हुए वायदा किया। इस पर रटांग प्रोजेक्ट का सर्वे भी हुआ। सुरक्षा विभाग ने इस प्रोजेक्ट को कामयाब करने का ज़िम्मा भी लिया। टेक्निकल तौर पर, प्रशासनिक तौर पर और वित्तीय तौर पर यह सुरंग पास हुआ था। अतः काम भी शुरु

हुआ और 2-3 करोड़ खर्च भी हुआ और फिर काम बन्द हो गया। हमारी प्रार्थना है कि इस प्रोजेक्ट को कामयाब करें।

चीनी यात्री हुएन सांग व आज़ादी के परवाने रास बिहारी बोस जो दिल्ली में वायसराय लॉर्ड हर्डिंग पर बम फैंकने के बाद रूपोशी की ज़िन्दगी बसर करने के लिए और सी॰आई॰डी॰ की नज़र से बचने के लिए तीन महीने अपर केलंग में पोस्टमास्टर के घर ठहरे। और यह ज्ञात हुआ कि अंग्रेज़ों की पुलिस उनका पीछा कर रही है तो तिब्बत के रास्ते जापान चले जाए। उस समय दूसरा विश्व युद्ध ज़ोरों पर था। उन्होंने हिन्दुस्तान को अंग्रेज़ों की गुलामी से आज़ाद कराने के लिए शहीद-ए-आज़म महान नेता सुभाष चन्द्र बोस से मिलकर इण्डियन नेशनल आर्मी की स्थापना की, ताकि सुभाष चन्द्र बोस की निगरानी में वतन को अग्रंज़ों से आज़ाद किया जाए। लाहुल-स्पीति के अतीत के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि भाषा-संस्कृति, बोली, वेष-भूषा, खान-पान, लोकगीत, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, रूढ़ियों, मान्यताओं के बिना पर यह ज़िला एक रोचक स्थान है। गंगा, यमुना, गोदावरी, सिन्धु, कावेरी ने भारतीय समाज को बनाने में बहुत बड़ा काम किया है। हिमाचल प्रदेश के सन्दर्भ में वहीं काम ब्यास, सतजुल आदि दरिया ने की, जबकि लाहुल-स्पीति में चन्द्रभागा व स्पीति दरिया ने की। चन्द्रभागा दरिया का जिक्र ऋग्वेद में आता है। लाहुल घाटी के मध्य बहता है और इसके किनारे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक ज़िन्दगी ने अपने आपको ढाला है। इसी चिनाब दरिया के किनारे, जो चन्द्रभागा संगम पर मिलने के बाद नाम लेता है, सोनि-भोटिड़ी के प्रेम और इश्क ने जन्म लिया। गौशाल गांव के रूपीरानी की गाथा गायी जाती है। इसी लाहुल-स्पीति में त्रिलोकनाथ और मरगुल भगवती माता का मन्दिर, हिड़िम्बा देवी का मन्दिर, गुरु घंटाल, शशुर, करदंग, गैमुर, गोन्धला व तेलिंग आदि लाहुल में तथा इसके अलावा स्पीति में ताबो, कीह, ढंकर, लोसर, माने, बौद्ध गोम्पे हैं। सातवीं सदी से पहले लाहुल-स्पीति के बारे बहुत कम लोगों को मालूम था। पश्चिमी हिमालय के इस छोटे से इलाके में बौद्ध मज़हब के आने से पहले बोन मज़हब को मानते थे। आठवीं सदी में गुरु पद्मसम्भव के लाहुल-स्पीति में पदार्पण करने पर यहां के लोगों में सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना और बदलाव बड़ी तेज़ी से आया। उन्होंने गुरु घंटाल मंदिर की बुनियाद भी रखी। और बौद्ध धर्म का प्रचार बड़ी तेज़ी से किया। इस से उनको बोधिसत्व के अवतार के रूप में मानते हैं। नवीं सदी में लाहुल-स्पीति का सुनहरा युग था। यानि 956-1035 लामा रिंचेन ज़ङपो ने बुद्ध मत के गोम्पे, छोर्तेन, मने रिंगमो, ताबो, किब्बर, लोसर, कीह, ढंकर इत्यादि गांव में स्थापित किए जिसके कारण ये गोम्पे शिक्षा संस्थान और पूजा-पाठ के केन्द्र बन गए। गुरु ज़रछ़न ज़छ़ो ने शशुर गोम्पा को स्थापित किया। लामा नोरबु ने करदंग गोम्पा को स्थापित किया। खुनु लामा जी ने लाहुल की यात्रा की, उन्हें नेगी लामा के नाम से भी याद किया जाता है। वह एक जाने माने विद्वान बुद्धिजीवी थे और बौद्ध धर्म के प्रचार में कोई कसर न छोड़ी। आखिर 1977 में शशुर गोम्पा में उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त किया। परमपावन दलाईलामा जी 5-6 बार लाहुल और तीन बार स्पीति आए। लाहुल में उनका पांचवाँ दौरा यानि 12 जुलाई, 1994 एक बहुत बड़ा वाकया था। उन्होंने जिस्पा गांव में काल-चक्र उत्सव को जारी करते हुए हज़ारों बौद्ध धर्म के अनुयायियों को, जो लद्दाख, ज़ंस्कर, भूटान, सिक्किम, पांगी से और दूसरी जगहों से आए हुए थे, आशीर्वाद दिया व विश्व शान्ति के लिए प्रार्थना की। लाहुल-स्पीति में और भी 20 गोम्पे हैं। पुराने ज़माने में लाहुल के प्रशासक नाममात्र के होते थे। ये जो या ठाकुर या फिर राणा कहलाते थे जो पब्लिक से सालाना मालगुज़ारी वसूल करते थे। इस मालगुज़ारी का कुछ हिस्सा लद्दाख के राजा को व चम्बा के राजा को और कुल्लू के राजा को दिया करते थे। यह नुमाइंदे बरबोग गांव, गौशाल गांव, करदंग गांव, गोरमा गांव के रहने वाले थे। जब गुगे राजा ने लाहुल को फतह किया तो चम्बा राजा के दिए हुए ताम्र प्लेट को चम्बा राजा ने वापस ले लिया। करीबन 1080-1110 ई॰ में लद्दाख के राजा लाछेन उप्पल ने लाहुल के रास्ते चलकर कुल्लू पर आक्रमण कर लिया। इस पर कुल्लू के और लद्दाख के दरमियान एक समझौता हुआ जिसकी रूह से कुल्लू के राजा ने लद्दाखी राजा को जो (गाय×याक = ज़ो) और लोहा देने का इकरार हुआ। क्योंकि ज़ो कुल्लू में नहीं होते थे, शायद लाहुल कुल्लू राजा के नियन्त्रण में था और लाहुल से ही लद्दाख को भेजा जाता था। 1535-1559 गोन्धला का राजा बहादुर सिंह था। उस वक्त भी अप्पर लाहुल कुल्लू राजा के नियन्त्रण में था। राजा प्रताप

सिंह के हकूमत के दौरान सब से ज्यादा ताकतवर नवाब लाहुल के नेता बरबोग का टशी ज़ल्पो था। सातवीं सदी के मध्य में लद्दाख पर मध्य तिब्बत ने जो कि मंगोलों के अधीन था, आक्रमण कर लिया। यह घटना 1645-1680 लद्दाख के राजा देलेग नमज़ल ने कश्मीर से मुगलों से मदद मांगी जिसके कारण बस्गो (लद्दाख के गांव) के मैदान से आक्रमणकारी भाग गए। लाहुल-स्पीति और ज़ंस्कर में इस हमले को याद करके रौंगटे खड़े हो जाते हैं। मंगोलों को जिन्हें सेग्पो कहते हैं, गल्दन छेरिंग इसके सरवराह थे। इसके हमले की वजह से तंग्युद गोम्पा, कुछ गोम्पे स्पीति में जैसे लालुंग गोम्पा आदि जलाकर राख कर दिए गए। कहते हैं मंगोलों की एक फौजी टुकड़ी जिसने लाहुल के केलंग के किले पर हमला कर दिया। और यह दस्ता आगे कुल्लू की तरफ बढ़ता चला आया। आखिर सख्त और कड़ाके की सर्दी, भारी हिमपात की वजह से गोन्धला के नज़दीक बर्फानी तूफान के बीच में फंस कर दम तोड़ गया। जिस जगह यह वाकया हुआ उसका नाम अब भी रोलोङ-थोङ कहते हैं। मंगोलों के पीछे हटने पर कुल्लू के राजा बुद्धि सिंह 1672 को मौका पा कर अप्पर लाहुल को अपने नियन्त्रण में लाया। राजा बुद्धि सिंह ने इस तरह पटन घाटी को हड़प कर लिया और गांव थिरोट तक कब्ज़ा कर लिया। कहा जाता है कुल्लू के राजा ने त्रिलोकनाथ मन्दिर के बोधिसत्व की मूर्ति को उठाकर ले जाने की कोशिश की। मगर मूर्ति इस कदर वज़नदार बन गई कि उसे उठाना नामुमकिन था। राजा बुद्धि सिंह को मायूस होकर वापस लौटना पड़ा। त्रिलोकनाथ की मूर्ति के दाईं टांग पर कुल्लू राजा के एक सिपाही ने गुस्से में आकर तलवार से वार भी किया, जिसका निशान आज भी देखा जा सकता है। एक घटना यह भी बताई जाती है कि पटन घाटी को राजा चम्बा ने राजा बुद्धि सिंह को अपनी लड़की को दहेज में दिया। यह घटना 1686-1719 के बीच की है। राजा बुद्धि सिंह के जाँनशीं राजा मान सिंह हुए। लाहुल के एक सरगना बरबोग के जो ने इस पर खिलाफत की। नतीजा यह हुआ कि उनके सब इख्तियारात राजा मान सिंह ने छीन लिए। उस समय बरबोग गांव का आखिरी जो बिलचुङ था। इस पर कोलोंग और गोन्धला के सरवराओं ने मानसिंह की मातहती कबूल की। इस के बदले में राजा मान सिंह ने उनको जागीरें दी और ठाकुर की पदवी से नवाजा। गुगे राजाओं ने भी लाहुल पांगी और चम्बा पर हकूमत की। 1670 ई. के करीब लद्दाख हकूमत का असर खत्म हुआ। अलबत्ता लद्दाख के राजा और कुल्लू के राजा के दरम्यान एक तिजारती समझौता हुआ जिसकी वजह से कुल्लू का राजा हर साल 100 कुलियों पर लोहे का बोझ लादकर लिंग्टी तक ले जाते और वहां से लद्दाख राजा का दिया हुआ गन्धक कुल्लू ले आते। कुल्लू के राजा मानसिंह ने अपने हकूमत का हद लिंग्टी तक रखा जो अब तक लाहुल का आखिरी हिस्सा है। राजा मान सिंह ने गोन्धला ठाकुरों के किला की तामीर की और गोंधला ठाकुर की लड़की से शादी की। गोंधला चर (= किला) के लोहे के गेट पर अभी तक उत्कीर्ण लेख मौजूद है। रेवेन्यू रिकॉर्ड से पता चलता है कि कुल्लू के राजा प्रीतम सिंह ने लाहुल के कुछ नौजवानों को फौज में भर्ती करके कुल्लू बजौरा तक लाया, जहां दुश्मन का मुकाबला किया। और राजा घेपन के नारों से इस लड़ाई का मुकाबला किया। मोरेवियन मिशन जिसकी बुनियाद केलंग में 1853 में रखी गई थी। ये ईसाई मोरेवियन मिशन केलंग में 1853 से 1940 तक रहे। उन्होंने बहुत अच्छा काम किया। यानि ऐतिहासिक (भाषाई, पुरातात्विक) खोज कर (ए॰एच॰ फ्रैंक) ने एक किताब लिखी जिसका नाम "एण्टीक्विटीज़ ऑफ इडियन तिब्बत-खण्ड -2" है, जो कि लाहुल के इतिहास को उजागर करती है। इस मिशन ने लाहुल वालों को आलू का बीज, साहिब का जौ, जिसके घास से पुला बनाते हैं और तन्दूर, जुराब की बुनाई, स्वेटर की बुनाई का प्रदर्शन करके रोटी-रोज़ी का सामान मुहैया कराया। कुल्लू राजा के रेवेन्यू हैडक्वार्टर गांव तान्दी में था जहां एक कमिश्नर और एक कनूनगो मुकर्रर किया था। यहां पर अनाज का एक बहुत बड़ा भण्डार था। यहां लाहुल का एक एजेंन्ट जो थुनू कामदारी के नाम से मशहूर था, नियुक्त था। लाहुल वालों पर बहुत जुल्म किया। बाद में जनता द्वारा कैद किए जाने पर उसके एक रिश्तेदार ने एक उस्तरा दिया जिससे अपने आपको खुदकुशी करके खत्म कर दिया। पहली जंगे अजीम 1914 से 1918 के दौरान लाहुल के ठाकुर अमर चन्द ने अंग्रेज राज्य की इम्दाद के लिए लाहुल के नौजवानों को भर्ती किया और खुद लाहुल के चन्द नौजवानों को लेकर मैसोपोटामिया बतौर जमादार (छटा लेबर कोर) हिस्सा लिया। 1918 को अमर चन्द को राय बहादुर के

खिताब से हकूमत-ए-बरतानिया ने नवाज़ा। 1921 को वह इस दुनिया से हमेशा के लिए चल बसे। उनकी मौत के बाद उनके बड़े बेटे ठाकुर अभय चन्द को लाहुल के प्रशासन का इन्चार्ज बनाया गया। लेकिन ठाकुर अभय चन्द, चन्द सालों के बाद दिमागी हालत तसल्ली बख्श न होने से उस वक्त के अंग्रेज़ हकूमत ने उनकी जगह केप्टन ठाकुर प्रताप चन्द को वज़ीर ऑफ लाहुल मुकर्रर किया, जो 1940 तक लाहुल के वज़ीर रहे। उन्हीं के खानदान से ठाकुर मंगल चन्द गैमुर वाले की गरतोग में माल अफसर भी रहे। उन्हीं के खानदान के ठाकुर पृथीचन्द ने लद्दाख क्षेत्र में पाकिस्तानी लुटेरों और हमलावरों के दाँत खट्टे किये। इस बहादुरी के इवज में कर्नल पृथी चन्द को महावीर चक्र से नवाज़ा गया। गैमुर के ठाकुर कर्नल खुशाल चन्द जो ठाकुर मँगल चन्द के लड़के थे, को भी लद्दाख में बहादुरी के लिए महावीर चक्र से नवाज़ा गया। जो लाओस में एक फौजी कमान में हिस्सा लेने जाते हुए हवाई हादसे में मारे गए। इसके अलावा लाहुल के कई नौजवानों को वीर चक्र दिए गए जिनमें कैप्टन भीम चन्द तोद वाले, नाइक तोबगे तिनन वाले शामिल थे। इसके इलावा लाहुल के इलाका व लोगों की भलाई करने वालों में जिनका ज़िक्र मैं करना चाहता हूँ उनमें खासतौर पर मुन्शी सज़ेराम लोट वाले, मास्टर जोद्पा फुन्चोग ठोलंग वाले, गोपू ठेकेदार मेज़ंग वाले, सोमदेव, ठाकुर प्रेम चन्द, लाल चन्द फुड़ा, अंगरूप ठाकुर बगैरह शामिल हैं।

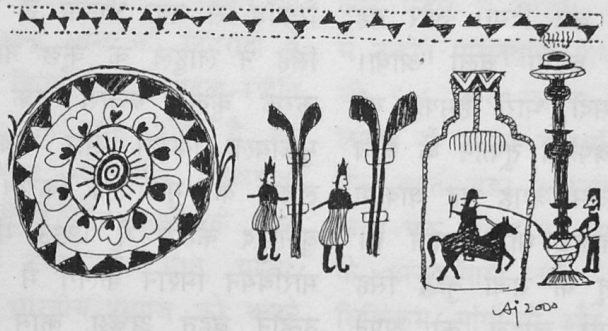

1840 से 1846 क लाहुल महाराजा रणजीत सिंह की अमलदारी में रहा और 1846-1940 तक अंग्रेज़ राज्य में लाहुल के खंगसर और गेमुर ठाकुरों के ईजारेदारी में रहा जिन्हें 'वज़ीर ऑफ लाहुल' के नाम से याद किया जाता है। 1940 के बाद ठाकुरों के इजारेदारी को खत्म किया गया और एक नयाब तहसीलदार मुकर्रर किया गया। जिसका हैडक्वार्टर केलंग था और सर्दियों में तमाम स्टाफ के साथ कुल्लू चले आते थे।

अब मैं स्पीति का इतिहास पाठकों की रुचि के लिए लिख रहा हूं। स्पीति जिसे हम लोग स्पीति के नाम से जानते हैं। बौद्ध धर्म के आगमन से पहले यहां सेन नस्ल के हिन्दू राजा राज्य करते थे। क्योंकि उन दिनों के चलाए गए सिक्के भी मिले हैं। अतीत में स्पीति बुशहर रियासत का एक अंग रहा और सतलुज दरिया के दाएं किनारे 15-20 गांव जो अब भी बहुत पिछड़ा हुआ इलाका है, स्पीति में शामिल था। गुगे राजे भी कुछ साल स्पीति के अधीन रहे। उस वक्त स्पीति के पिन वैली से आमदोरत ब-रास्ता भावा जोत और रूपन दर्रे से था। एक तांम्र प्लेट इस सिलसिले में निरमण्ड गांव के पुरुषोत्तम राम के मन्दिर में मौजूद है। कोई राजा समुद्रसेन जो गालिबन स्पीति का राजा था का दिया हुआ है, मौजूद है। यह सातवीं सदी के ज़माने का है। उन्हीं दिनों स्पीति का ठाकुर जो कुल्लू के नगर गांव के नज़दीक रूमसू गांव में रहता था। अप्पर कुल्लू के हमटा जोत तक उनका कब्ज़ा था। हमटा जोत के आस-पास उसके किले के खण्डहर मौजूद हैं। स्पीति के राजा राजेन्द्रसेन ने कुल्लू पर 600-650 ई. में हमला कर के कुल्लू के राजा को अपने अधीन कर दिया, जो स्पीति के राजा को नज़राना देता रहा, लेकिन कुल्लू के राजा प्रसिद्ध पाल ने स्पीति के राजा को खुराजे मालया देना बन्द कर दिया और स्पीति के इलाके में चढ़ाई कर दी। रोहतांग दर्रे के पास स्पीति की फौज पर कुल्लू के राजा ने विजय हासिल की। 1680 ई. को कुल्लू के राजा मान सिंह ने दोबारा हमला कर दिया अगरचे उस वक्त स्पीति लद्दाख के मातहत था फिर भी कुल्लू के राजा मान सिंह ने विजय हासिल की। पिन वैली के नज़दीक भावा जोत और रूपन दर्रे के नज़दीक दो किलों के खण्डहर अभी भी देखने को मिलते हैं जिन्हें स्पीति के लोग ग्युंग्ति खर कहते हैं, यानि कुल्लू के किले के नाम से पुकारते हैं। ये किले कुल्लू के राजा मान सिंह ने तामीर की थी। इस तरह स्पीति के राजा लद्दाख और कुल्लू के राजा दोनों को मालया देता रहा। लद्दाख के राजा ने एक गवर्नर को स्पीति का प्रशासन चलाने के लिए भेजा लेकिन वह गवर्नर फसल कटने के बाद लद्दाख चला जाता था और स्पीति को एक वज़ीर और एक खानदानी ऑफिसर प्रशासन पर हावी रहते थे। लेकिन इनके ऊपर एक हैड मैन जिसे गत्पो कहते थे, नियन्त्रित करता था। स्पीति का राजा बुशहर, कुल्लू

और लद्दाख के राजाओं को खराजे मालया अदा करता रहता था ताकि वह भी खुश रहें और स्पीति को लूटमार से बचाए। स्पीति का राजा कुल्लू के राजाओं के रहमोकरम पर रहता था क्योंकि स्पीति के लोग मार्शल कौम से सम्बन्ध नहीं रखते थे और लड़ाई करने से डरते थे। इसलिए हमले की सूरत में स्पीति के लोग पहाड़ों पर चढ़ जाते और पहाड़ियों की चोटियों पर आग जला देते। जिसकी रोशनी तमाम स्पीति घाटी में नजर आता जिसका खास मकसद यह पैगाम देना होता था कि स्पीति के लोग खास जगह पर इकट्ठे हो जाएं जिसे लोकल जुबान में ढंकर कहते हैं। वैसे स्पीति में एक गांव किला के नाम से मशहूर है जिसे ढंकर गांव कहते हैं जहां एक गहरी खाई भी मौजूद है जिसमें बतौर जेल मुजरिमों को डाल दिया जाता था जो बाहर निकल नहीं सकते थे। इस तरह लोग जमा होकर अगला कदम जो उठाना हो फैसला करते थे। ताकि वे दुश्मन का मुकाबला कर सकें। स्पीति के लोग तब तक पहाड़ियों से नहीं उतरते जब तक दुश्मन इलाका छोड़कर चले न जाते। इस तरह का हमला 17वीं सदी के आखिरी सालों में लद्दाखियों ने स्पीति पर किया। हस्ब मामूल स्पीति के लोग अपने माल, बाल-बच्चे समेत और कीमती सामान को लेककर पहाड़ियों के ऊपर भाग निकले परन्तु लद्दाखी फौज सर्दियों में भी स्पीति में रहने लगे। इस पर स्पीति के लोगों ने खुफिया तौर पर सलाह किया। जिसे स्पीति के लोग ट्रब कहते हैं। इस तरह उन्होंने फैसला किया कि लद्दाखी फौजियों के साथ दोस्ती गांठ लिया जाए। इस तरह लद्दाखी फौजियों को दोस्त बनाकर एक बड़े दावत पर बुलाया गया और लद्दाखी फौजियों को गांव के घर-घर बांट कर भेजा गया और खूब मीट शराब, छंग और नाच-गाने से खुश किया। जब लद्दाखी फौजी मदहोश हो गए तो स्पीति वालों ने उन्हें एक-एक करके सब को मार दिया। परन्तु कुछ फौजी जो होश में थे ढंकर की तरफ भागे उनको भी पकड़ कर रस्सी से बांध कर और फिर पहाड़ी की चोटी से गिरा दिया और मार दिया। यह बात 1776 ई. की है। दूसरा हमला 1819 को कुल्लू के जिरहब बन्द फौजियों का कुन्ज़ोम जोत पर हुआ। इस हमले को कुल्लू के राजा के वज़ीर सोभाराम ने अंजाम दिया था। जब महाराजा रणजीत सिंह ने कश्मीर को जीता तो उन्होंने लद्दाख के राजा से मालया वसूल किया। उस वक्त स्पीति लद्दाख बुशहर को मालया अदा करता था। कश्मीर के महाराजा गुलाब सिंह के काबिल जनरल ज़ोरावर सिंह ने लद्दाख को 1841 में फतह किया। एक अफसर रहीम खान को 1841 में स्पीति का इन्चार्ज बनया। रहीम खान के दामाद गुलाम खान ने स्पीति के गोम्पों को लूटा और मूर्तियों की तोड़फोड़ करना शुरू किया। उसी साल 1841 को दिसम्बर के महीने में गुलाम खान व जनरल ज़ोरावर सिंह के कमाण्ड की और फौज ने रुब्शो और तिब्बत की तरफ कूच किया। गुलाम खान कैदी बनाया गया और तिब्बत के हैडक्वार्टर ल्हासा ले जाया गया, वहां उसे जुल्म करके मार दिया गया। जनरल ज़ोरावर सिंह भी फौजियों के साथ शिद्दत की सर्दी और राशन की कमी की वजह से मौत की गोद सो गए।

1841 में सिक्खों ने कुल्लू को विजय किया। एक रेजीमेन्ट फौज स्पीति को भेजा गया, जैसा कि मैं ऊपर ज़िक्र कर चुका हूं। स्पीति के लोग घरबार छोड़कर पहाड़ियों पर चढ़ गए। सिक्ख फौज ने पिन वैली में गोम्पों, मन्दिरों को लूटा, कीमती थंके जला दिए। इस तरह स्पीति को सिक्खों ने अपने अधीन रखने का इरादा छोड़ दिया और लद्दाख के अधीन ही रहा। 1846 के पहली एंग्लो सिक्ख लड़ाई के बाद तमाम लद्दाख जम्मू महाराजा गुलाब सिंह के हवाले किया गया। परन्तु स्पीति को कुल्लू के साथ मिलाया गया। इसका खास मकसद यह था कि चंगथंग जो तिब्बत का हिस्सा है स्पीति के ब-रास्ते सड़क का निर्माण करके तिब्बत के ऊन, पशम, कंग चीगू व्यापार को बढ़ाया जाए। अंग्रेज़ों के अधीन आने की वजह से जो लूटमार रोज़मर्रा होते थे, वे सदा के लिए खत्म हो गए। स्पीति के लोग ज़मीन का मालया अंग्रेज़ों को अदा करने लगे। लेकिन मातहती लद्दाख का रहा परन्तु लद्दाख का गर्वनर गरपोन का ओहदा खत्म कर दिया।

1846 में ब्रिटिश राज कायम होने पर सरहदों को नए सिरे से निशान दिया गया। 1846 के मौसम -ए-सरमा में सर कनिंगहम और वांस एन्ग्रियू ने स्पीति, लद्दाख और तिब्बत के हदों को मुकर्रर किया। 1846 के बाद 3 साल तक मालया बुशहर के राजा के वज़ीर मानसुख को देते रहे। लेकिन 1849 को मेजर हेय, असिस्टैंट कमिश्नर कुल्लू, स्पीति गए और स्पीति का प्रशासन सम्भाल लिया। बाद में स्पीति के नोनो को 1883 फ्रंन्टियर रेगुलेशन एक्ट के तहत वज़ीर ऑफ स्पीति का खिताब नोनो साहब को दिया गया। जो आज़ादी तक कायम रहा।

लाहुली मुहावरे (पटनी भाषा)

संकलनकर्त्ता - विकास

1. **पट ग्वशे काकलो फ्या** - चक्का (मोटा सिल) फट कर छिपकली के माथे - चमत्कार होना या जिसकी आशा ही न हो वह होना।
2. **गोह् पुन्ज़ःरिङपिपि ल्हे हन्दई** - पहाड़ के शिखर पर पहुंचाए लेते हो - बहुत तंग करना।
3. **चि पुग् मोच्ःतई आ?** - क्या दाने भून रहे हो? - बहुत शोर करना।
4. **ल्हल्हङ रिङ हुस रमे बास-ए अपि** - गोबर को घुपाने से दुर्गन्ध ही आती है - दुष्ट को समझाना व्यर्थ है।
5. **खुइ-यू मेखुदु क्योङ-क्योङ ए** - कुत्ते की दुम टेढ़ी ही - दुष्ट व्यक्ति कभी सीधा नहीं होता।
6. **मेह् पचि्** - आग फांकना - बहुत गुस्से होना।
7. **ल्वाह-बोति चङ्सि राई** - 'ल्वाह' (काठू का रोट विशेष) और छाछ निगल ज़ाने दो - सुकून चाहना या शान्ति चाहना।
8. **फिल्डि्** - पिंज़ाई करना - मन गढ़न्त बातें करना।
9. **शीःखोल शुचि तोः** - *शीःखोल* बना हुआ है। - बहुत प्रसन्न होना।
10. **ब्रङ्-ब्रङ् शुत्तग** - फूला-फूला सा हो गया हूँ - पेट भर जाना
11. **ल्हुग्-दपि** - आटे की धूलि गिरना - कठिन परिश्रम से बुरी तरह थक जाना।
12. **ज़ोग-ज़ोग शुचः** - शंकु की तरह ऊबड़ा-खबड़ा हो गया - बुरी तरह से पिटना।
13. **र्हेच्वणःशुचि-उ ठ्रोः ल्हिग्सतई** - डंगरों को खुला छोड़े जैसा किए जाते हो। - खूब धमा-चौकड़ी मचाना।
14. **पोम्बोरोग् शुबि** - *पोम्बोरोग्* होना - आपस में बुरी तरह लड़ना।
15. **ल्हेक्सिमि जोगे तोतोकु** - परस्पर बदल जाने योग्य हैं। (द्विवचन) - हम शक्ल होना।
16. **जांह चचि्** - नाक चबाना - लाज बचाना।
17. **याह् चशः** - मस्तक गर्मा गया - किस्मत चमकना।
18. **बुड़-बुड़-सते** - ज़ोर-ज़ोर से शारीरिक हरकत कर रहा - बहुत क्रोधित होना।
19. **हारे बण रिङ मेह रन्डि्** - हरे वन में आग लगाना। - बहुत शरारती होना।
20. **श'मिणि-उ घा शुत्तन** - लम्बी टहनी सा हो गए हो - बहुत लम्बा और दुबला होना।
21. **छति ल्हत्तोर** - शोर्वा कर (बना) दिया। (बहुवचन) बुरी तरह से पीट दिया।
22. **र्हब शुत्तन** - प्रभासित हो गए हो। - सुन्दर दिखना।
23. **शाह्-र्हुस तिङ त्राह** - मांस-हाड़ में त्राहि-त्राहि - बहुत दुखी कर देना।
24. **बेन्ज़ः कुलु दः** - बंसी बजाओ अब - मौका हाथ से निकल जाना।
25. **पेन्चेब्तु घा शुत्तन** - छोटी सूई जैसे हो गए हो। - बहुत कमज़ोर दिखना।
26. **ढढोर-ओ घा शुत्तन** - मोटे खोखले तने जैसा हो गए हो - बहुत मोटा दिखना।
27. **पुन्ज़ः चशः मश्ता?** - सिर गर्म हो गया तो नहीं? - चुप रहने के लिए धमकी देना।
28. **लम्ज़ङ ठुम्शि पिऊचो घा** - कढ़ाई में डुबोए चूहे जैसा - लल्लू सा दिखना।
29. **फुल्जि शुचि** - धूसर-वर्ण होना - अपमानित होना।
30. **पुन्ज़ः छोक्चि्** - सिर खुजाना - सोच में पड़ ज़ाना।
31. **र्हेच्वण शुचि-उ ठ्रोः ल्हिगिस** - डंगरों को खुला छोड़े जैसा आचरण करना - अपनी-अपनी मनमानी करना या अनुशासनहीनता
32. **शोङ्-शोङ् शुचः** - खाली-खाली हो गया है - सब कुछ लुट जाना।

पटनी बोली के कुछ शब्द तथा उनके अर्थ -

1. **खोगलांणु** - स्वास्तिक, (खोगल त्यौहार की पूर्वसंध्या पर नगाड़े पर बजाया जाने वाला राग विशेष)।
2. **छङन्तल्ज़** - दीपाधार।
3. **ग्रोमो** - खड्डी का शटल।
4. **गेइरि** - अण्डे की ज़र्दी।

5. **मोक्ट्रः** - सिर पर चोट लगने से होने वाला उभार

6. **ग'यह्** - मकान के भीतरी भाग में स्थित कक्ष जहां पर भण्डारण किया जाता है।

7. **डड्डु** - बड़ा सा कड़छा।

8. **अकुड़ि** - लकड़ी का वह गुटका जिस के ऊपर रख कर कोई चीज़ काटी जाती है। या हल चलाते समय दो सियों के बीच रह जाने वाला अनजुता भाग।

9. **चि़ल** - अस्थि मज्जा।

10. **सिल्कि** - छ़ति नामक लाहुली सूप/शोर्वा को गाढ़ा बनाने के लिए डाले जाने वाले आटे को छेड़ा मारने के लिए बना एक घास विशेष के पतले डंठलों का इंच-सवा इंच मोटा गट्ठा।

11. **टिश्** - काठू का चोकर।

12. **पंङगेर्च़** - तकली को एक स्थान पर घूमते रहने देने के लिए सरसों की खली तथा बकरे के ऊन को इकट्ठे गूंध कर बनाया गया गोलाकार या चौरस आधार जिस के ऊपरी स्तह पर अर्धगोलाकार धंसाव होता है।

13. **मेश्ङ** - गोबर का बना अर्धगोलाकार पिंड जो जलाने के लिए बनाया जाता है।

14. **तुर्मिग** - हल के अग्र भाग में लगने वाला लकड़ी का टुकड़ा जिसके साथ जुए की रस्सी फसाई जाती है।

15. **हरल** - खड़ी लकड़ियों से बना पार्टीशन।

16. **कुरुल्ज़** - भेड़-बकरियों के कक्ष के एक कोने में मेमनों को अलग रखने के लिए बना एक अस्थाई लघु कक्ष।

17. **छुज़ोम** - लकड़ी के छोटे तख्तों को जोड़ कर बनाया गया बेलनाकार जल पात्र जिसे पीठ पर उठाया जाता है।

18. **कुकिड़ि** - घ्राट में गेहूं के दानों को नियंत्रित करने वाला लकड़ी या सींग का टुकड़ा।

19. **राखोल/राखोल्ड्रः** - बर्फ का गोला।

20. **चिर्काच** - खुमानी के पेड़ से निकलने वाला गोंद।

21. **खशट** - मक्खन को उबाल कर घी बनाने की प्रक्रिया में शेष रह ज़ाने वाले ठोस अपद्रव्य या बुराधन।

22. **फुन** - फावड़े से काट कर निकाला गया वह मिट्टी का पिंड जिसे घास की जड़ों ने अच्छी तरह जकड़ रखा होता है।

23. **मकुड़ि** - छोटी कुल्हाड़ी।

24. **कुसुम्ज़** - बड़ा ओखल।

25. **ट्रेकिल्ड्रः** - काइल, केड़ो आदि वृक्षों के बीजों का ठोस गुच्छ।

26. **खबेन** - एक घास विशेष ;च्वसलहवदनउ ूममकद्ध जिस का स्वाद ज़रा खटास लिए होता है, इसे कच्चा खाया भी जाता है।

27. **छुल्यांग** - गर्म तरल पदार्थ से जलने पर बना फफोला।

28. **भुत्पः** - धौंकनी।

29. **पिशोटि** - भेड़-बकरी के साबुत खाल का बना थैला जिसमें आटा वगैरा भरा जाता है।

30. **दोङ्मो** - नमकीन चाय को अच्छी तरह मिश्र करने के लिए बना लकड़ी का बेलनाकार पात्र जिसमें एक डण्डे के अग्रभाग में लगे गोलाकार लकड़ी के सहारे ऊपर नीचे कर हिलाया जाता है।

31. **डोई** - लकड़ी की कड़छी।

32. **छुद्** - काठू के आटे की लेई ज़िसमें खमीर उठाया जाता है जिससे 'ल्वाड़' नामक रोट बनाया जाता है। या चिकनी मिट्टी का पुताई के लिए बनाया गया घोल।

33. **त्रिह्मः** - तिपाई।

34. **बोस्खेर** - झाड़ियों को काटकर डण्डों से बांधकर बनाया गया कृषि यंत्र जिसे खेत को समतल करने के लिए बुआई के बाद खींचकर खेत में चलाया जाता है।

35. **रहेन्ड्रः** - लकड़ी का चौरस टब जिसकी गहराई 4"- 6" के करीब होती है।

36. **दिर** - द्वार को भीतर से बन्द करने के लिए दीवार के भीतर आर पार लगी लकड़ी।

37. **ड्रमिग्** - विकेट नुमा खड़े या तिरछे लकड़ियों का बना छोटा दरवाज़ा।

38. **रेन** - 1 किलो के करीब अनाज का माप-पात्र।

39. **खोरः** - 'छोरतुम' नामक पत्थर फैंकने के रस्से या गुलेल के मध्य का नाव नुमा भाग जिसमें पत्थर रखा जाता है।

परिवर्तन कितना जरूरी

– सुभाष हंस

आज लाहुल में बदलाव समयानुसार एवं उसी गति से आ रहा है जिस गति से देश के अन्य हिस्सों में। आज बदलाव हर क्षेत्र में बराबर देखा जा सकता है। मौलिक सुख साधनों में ही नहीं बल्कि त्यौहारों एवं रीति–रिवाज़ों में भी कई बदलाव आए हैं। वे सब त्यौहार मनाए तो जाते हैं जो यहां के बुज़ुर्ग मनाते थे, लेकिन आज उस श्रद्धा, इच्छा, रुचि एवं ललक से ही नहीं मनाए जाते बल्कि कुछ को परिवर्तित कर अपनी सहूलियत के अनुरूप बनाकर अथवा त्यौहार है, मनाना पड़ता है, सो मना रहे हैं, ऐसा सोचकर मनाए जाते हैं। और कुछ को सम्पूर्ण ज्ञान न होने के कारण ऐसा ही चलेगा, मानकर मनाया जा रहा है। मनाने का तरीका दिन व दिन आधुनिक होता जा रहा है। मैं सभी त्यौहारों एवं रीति–रिवाज़ों का वर्णन तो नहीं कर सकता लेकिन ब्याह–शादी के विषय में जरूर थोड़ा सा तसरा करना चाहूंगा।

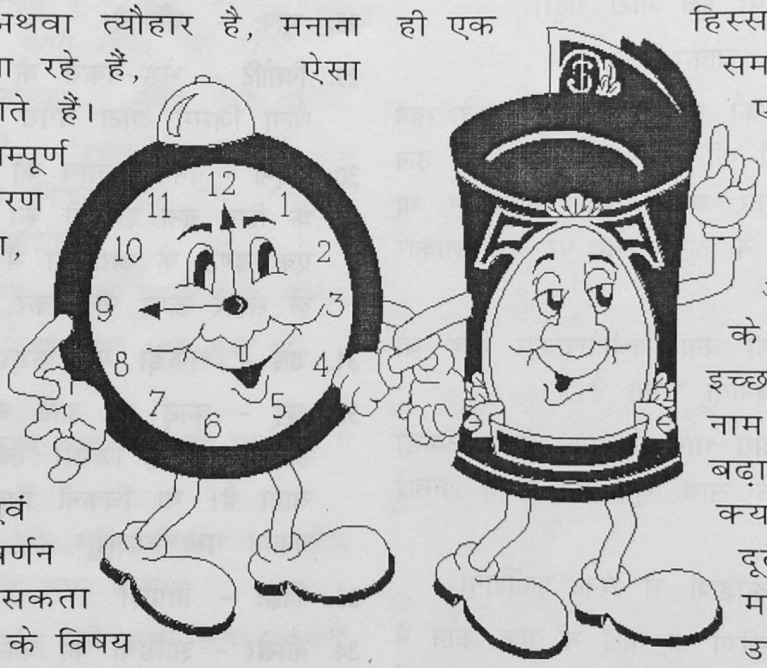

हर गांव में एक या दो, कभी उससे भी ज़्यादा शादियां हर साल होती हैं। आज हम देखते हैं कि शादी इस प्रकार हो रही है, कभी ऐसा लगता है कि अमुक व्यक्ति अपनी अमीरी को दिखाना चाह रहा है, तो कभी ऐसा लगता है कि अमुक व्यक्ति मजबूरी में यह सब कर रहा है। ऐसे रिवाज़ों को अपनाया जा रहा है जिन्हें हमने या तो सुना होता है या फिल्मों में देखा होता है। न शिरेढ़ि (यानि पगड़ी) पहनाते समय 'घुरे' (यानि मन्त्र रूपी लोक गाथा) गाए जाते हैं, न तो दुल्हन को विदा करते समय विदाई–घुरे गाया जाता है। इसके स्थान पर मांग भराई, जूते चोरी या वह जो हमारे रिवाजों में कहीं नहीं है, अनिवार्य होता जा रहा है। बेशक बदलाव समयानुसार आवश्यक है लेकिन इतना भी नहीं कि हम अपनी अच्छी चीजों को भुलाकर आलतू–फालतू चीजें अपना लें।

आज जिस तरह से बढ़–चढ़कर ज़ोड़ दिया जा रहा है वह क्या है? क्या यह भी आधुनिक बनने के लिए ज़रूरी है? मानते हैं कि यह हमारे रिवाज़ों का ही एक हिस्सा है लेकिन पुराने समय में यह मात्र एक शगुन या एक रिश्तेदार की ओर से एक सहयोग मात्र था। लेकिन आज स्वयं दुल्हन के घर वाले अपनी इच्छानुसार ज़ोड़ के नाम पर दहेज को बढ़ावा दे रहे हैं। क्या यह कल को दूल्हे की ओर से मांगी नहीं जाएगी? उस समय क्या होगा? क्या इतना आधुनिक बनना आवश्यक है जिसमें एक व्यक्ति को अपनी बेटी के घर को बसाने के लिए स्वयं का सब कुछ खोना पड़े?

शादी दो दिलों का मिलन होना चाहिए न कि एक बेटी के बाप की बरबादी। इसलिए मैं तो सोचता हूँ कि परिवर्तन आवश्यक है लेकिन किसी को सताकर या बरबाद कर परिवर्तन लाने की कोई आवश्यकता नहीं है। अभी तो यह परिवर्तन वैसा रंग नहीं दिखा रहा है, लेकिन क्या यह विषय चिन्तन का नहीं है?

लाहुल घाटी में बागवानी के बढ़ते कदम और नई सम्भावनाएँ

- सोनम अंगरूप

लाहुल घाटी हिमाचल प्रदेश का एक ऐसा क्षेत्र है, जो समुद्र तल से 8000 से 11000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यहां की जलवायु शुष्क समशीतोष्ण है, जिसके कारण घाटी में सेब, खुमानी, पलम, नाशपाती, बादाम, अखरोट, चरी तथा विशेषकर हॉप्स की बागवानी सफलतापूर्वक की जा रही है। इन फलों में से बागवानों द्वारा सेब तथा हॉप्स को प्रमुख नगदी फसल के रूप में अपनाया जा रहा है। इन फलों की बागवानी को बढ़ावा देने के लिए उद्यान विभाग ने यहां 12 सितम्बर, 1974 में ज़िला उद्यान अधिकारी का पद सृजित किया। इस समय ज़िला उद्यान अधिकारी केलंग के कार्यालय में 36 स्वीकृत पदों के विरुद्ध 28 अधिकारी एवं कर्मचारी कार्यरत हैं। विभाग ने उपर्युक्त फलों की पैदावार बढ़ाने के लिए लक्ष्य निर्धारित किए हैं, जिनकी उपलब्धि हेतु विभाग प्रत्येक वर्ष बागवानों को विभिन्न फलों की प्रजातियों के उन्नत किस्मों के फलदार पौधे बागवानों को आधी कीमत पर मुहैया करवाती है। इस समय घाटी में सेब के अन्तर्गत 140 हैक्टेयर क्षेत्र तथा अन्य समशीतोष्ण फलों के अंतर्गत 20 हैक्टेयर क्षेत्र बागवानी के अंतर्गत लाया जा चुका है जिसकी उत्पादकता व्यापक रूप से बढ़ाई जा रही है तथा बागवानों द्वारा पर्याप्त मात्रा में अपनाया जा रहा है। सेब जो कि प्रदेश के निचले क्षेत्र जैसे कुल्लू, शिमला तथा चम्बा में एक प्रमुख नकदी फसल है, भविष्य में जन-जातीय क्षेत्रों में भी एक प्रमुख नकदी फसल के रूप में उभरेगा। चूंकि वातावरण में तापमान की वृद्धि तथा सेब के लिए उपयुक्त जलवायु की उपलब्धता होने के कारण इसकी बागवानी में कोई अड़चन नहीं होगी। सेब की बागवानी के साथ, शुष्क फलों की बागवानी भी घाटी में सफलतापूर्वक की जा रही है। शुष्क फलों में खुमानी, बादाम और अखरोट प्रमुख हैं, वहीं अन्य समशीतोष्ण फलों जैसे - प्लम, नाशपाती और चरी की बागवानी भी बागवानों द्वारा घरेलू स्तर पर उपयोग हेतु अपनाया जा रहा है।

सेब, अन्य समशीतोष्ण फलों तथा शुष्क फलों की बागवानी को बढ़ावा देने के लिए उद्यान विभाग द्वारा व्यापक कार्यक्रम चलाया जा रहा है। जिसमें जन-जातीय उपयोजना के विशेष केन्द्रीय सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत बजट में से घाटी के बागवानों को उपरोक्त फल पौधों की बागवानी से सम्बन्धित विभिन्न उद्यान सामग्रियां जिनमें बागीचे के चारों ओर बाड़ लगवाने हेतु इंटरलिंक चेन, एंगल, आईरन, कांटेदार तार, बागीचों को सींचने के लिए अल्काथीन पाईप, विभिन्न आकार की पानी की टंकियां फल पौधों को रोपित करने के लिए गैंती-बेलचा-झब्बल तथा फल पौधों की कांट-छांट के लिए फेल्को कैंची, आरी 50 प्रतिशत उपदान पर मुहैया करके उपलब्ध करवाया जाता है। इसी कार्यक्रम के अंतर्गत परिवहन पर 100 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है और उपरोक्त सामग्रियां बागवानों को निकटतम प्रसार केन्द्रों के माध्यम से उपलब्ध करवाया जाता है।

फल पौधों की बागवानी के साथ-साथ विभाग द्वारा घाटी में हॉप्स की खेती के लिए भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। हॉप्स की खेती को बढ़ावा देने के लिए उद्यान विभाग ने लाहुल हॉप्स सोसाईटी शांशा के सहयोग से क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला जम्मू से हॉप्स की नई प्रजातियां जैसे - पी.एल. -442, सोमा - 433, हारमुख तथा आर.आर.एल. (एच) - 54,97,82 तथा 84 के उन्नत किस्मों के पौधे, घाटी के विभिन्न क्षेत्रों में प्रदर्शन तथा प्रयोग के तौर पर लगाए गए हैं जिसके परिणाम सराहनीय हैं तथा इन किस्मों का उत्पादन व्यापक स्तर पर बागवानों के खेतों में किया जा रहा है। उद्यान विभाग हॉप्स की पैदावार बढ़ाने के लिए बागवानों को महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान करता है जिसके लिए हर वर्ष क्षेत्रीय अनुसन्धान प्रयोगशाला जम्मू के वैज्ञानिकों द्वारा हॉप्स की खेती से सम्बन्धित प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाता है जिन में घाटी के हर क्षेत्र से किसान-बागवान भाग लेते हैं। एक प्रमुख नकदी फसल होने के कारण हॉप्स के अन्तर्गत अधिकाधिक क्षेत्र लाने के लिए तत्पर हैं। पूर्व के वर्षों में विपणन समस्या के कारण हॉप्स की खेती को बागवानों द्वारा पुनः अपनाने में कुछ समस्याएं उत्पन्न हो रही थी, परन्तु अब हिमाचल सरकार द्वारा सोलन ज़िला के बद्दी नामक स्थान पर एक हॉप्स पैलेट इकाई की स्थापना कर दी गई है जिसमें हॉप्स पैलेट, हॉप्स तेल तैयार करने, इसकी गुणवत्ता को कायम रखने के लिए कार्बन डॉइऑक्साईड एक्सट्रेक्ट बनाई जाती है।

इस संयन्त्र के स्थापित हो जाने से भारतीय ब्रूअरियाँ लाहुल की हॉप्स फसल को फिर से खरीदने के लिए प्रेरित हो रही हैं। गत वर्ष 2001-2002 के दौरान 39 मी. टन शुष्क हॉप्स का उत्पादन हुआ था, को एरोमेटिक प्राईवेट कम्पनी द्वारा विभिन्न भारतीय ब्रूअरियों को बेची जा चुकी है तथा इस वर्ष लाहुल के हॉप्स उत्पादकों को लाहुल हॉप्स सोसाईटी शांशा के

माध्यम से भुगतान किया जाएगा। इसके साथ-साथ हिमाचल सरकार ने वर्ष 1998-99 से 2003-04 तक हॉप्स उत्पादकों का हॉप्स विपणन समस्याओं के समाधान हेतु वित्तीय सहायता 'समर्थन मूल्य' के रूप में प्रदान करने का निर्णय लिया जिसमें हॉप्स उत्पादकों को वर्ष 1998-99 से 2001-02 तक की हॉप्स फसल की राशि लाहुल हॉप्स सोसाईटी शांशा के माध्यम से प्रदान की जा चुकी है। यह समर्थन मूल्य हॉप्स उत्पादकों को इस शर्त पर प्रदान किया जाता है कि वे हॉप्स उत्पादन को प्रति वर्ष 50 मी. टन अतिरिक्त उत्पादन बढ़ाएं, चूंकि भारत में घरेलू हॉप्स उत्पादन की मांग बहुत अधिक है। वर्तमान में भारत में राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भारतीय ब्रूअरियों की हर वर्ष 400-450 मी. टन (शुष्क) हॉप्स की मांग है। यह लाहुल घाटी के हॉप्स उत्पादकों की खुशकिस्मती ही है कि हॉप्स की खेती केवल जनजातीय क्षेत्रों (लाहुल एवं पांगी) में ही की जाती है, जहां की जलवायु हॉप्स की खेती के लिए अत्यन्त उपयुक्त पाया गया है।

इसके अतिरिक्त लाहुल घाटी में हॉप्स उत्पादकों को हॉप्स विधायन सुविधा प्रदान करने के लिए करगा में (3+3) 6 मी. टन प्रतिदिन, शांशा में 6 मी. टन प्रतिदिन, बारिंग में 6 मी. टन प्रतिदिन विधायन क्षमता वाली विधायन इकाइयों की स्थापना की गई हैं, जहां विधायन कार्य का हर वर्ष लाहुल हॉप्स सोसाईटी शांशा द्वारा प्रबन्ध किया जाता है। इसके साथ कुकुमसेरी में भी एक और विधायन इकाई की स्थापना की गई है जिसकी क्षमता 6 मी. टन प्रतिदिन होगी। भवन निमार्ण का कार्य पूर्ण कर लिया गया है। केवल विद्युत आपूर्ति का कार्य शेष है। इस वर्ष विधायन के लिए तैयार हो जाएगा। इस प्रकार घाटी में हॉप्स विधायन की कुल क्षमता 30 मी. टन प्रतिदिन हो ज़ाएगी। इन विधायन केन्द्रों की स्थापना होने से घाटी में हॉप्स उत्पादक हॉप्स की खेती को बढ़ावा देने के लिए अधिकाधिक प्रोत्साहित होंगे।

सम्भावनाएं - घाटी के अधिकतर किसान एवं बागवानों की आय का मुख्य साधन कृषि है जिसमें मुख्यत: आलू, मटर व कुठ का उत्पादन हैं तथा मण्डी में अच्छी दरों पर बिकते हैं। गत कुछ वर्षों से किसान एवं बागवान 'ग्लोबल वार्मिंग' से त्रस्त हैं जो कि इन फसलों की खेती के लिए समस्याएं उत्पन्न कर रही हैं। वहीं फल फसलों की बागवानी के लिए यह वातावरण अनुकूल साबित हो रहा है। यद्यपि इस जनजातीय ज़िले में सेब तथा अन्य समशीतोष्ण फलों का उत्पादन इतना अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया है, फिर भी सेब का प्रजात्योचित उपयुक्त आकार, भरपूर रंग, रसीलापन तथा भण्डारण क्षमता अधिक होने के कारण मण्डी में लाहुली सेब की मांग बढ़ने लगी है। पूर्व में लाहुल घाटी की जलवायु सदैव ठंडी रही है, इसलिए बागवानी सम्बन्धी कार्य नगण्य थे, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से बढ़ते तापक्रम के चलते यहां का तापमान भी गर्म हुआ है, जो बागवानी के लिए अनुकूल है। अब घाटी के किसानों का झुकाव बागवानी की ओर तेज़ी से बढ़ रहा है। सेब जो पहले केवल कुल्लू एवं शिमला में ही हुआ करता था, अब लाहुल घाटी में भी होना आरम्भ हो गया है। इसके अतिरिक्त घाटी में गुठलीदार फलों एवं शुष्क फलों जैसे - खुमानी, चरी, प्लम, बादाम, अखरोट तथा थांगी आदि फलों की बागवानी की भी अपार सम्भावनाएं हैं। घाटी के उदयपुर, शांशा, जाहलमा तथा थिरोट आदि क्षेत्रों में सेब के बहुत पुराने बागीचे स्थापित हैं। इन क्षेत्रों का सेब मण्डी में ले जाने हेतु अक्तूबर माह में तैयार हो जाता है। इस घाटी को अन्य क्षेत्रों से जोड़ने वाली एकमात्र सड़क रोहतांग दर्रे पर असमय बर्फ पड़ने के कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, फलस्वरूप घाटी के बागवानों का उत्पाद मण्डियों में बिक्री हेतु नहीं पहुंच पाता, जो कि आज तक किसानों का सेब उत्पादन की ओर उत्साहित न होने का एकमात्र कारण रहा है। परन्तु हाल ही में भारत के माननीय प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने उनके शिमला प्रवास के दौरान एक अप्रैल, 2002 से रोहतांग सुरंग का निर्माण कार्य आरम्भ करने को हरी झण्डी दे दी, जिससे घाटी के किसान बागवानी की महत्ता को ध्यान में रखकर अधिक उत्साहित हुए हैं। इसके साथ-साथ घाटी में बागवान सेब की जल्दी पकने वाली प्रजातियां, जो स्पर किस्म की हैं, जिनके पौधे बौने रहने के साथ-साथ पैदावार भी अधिक देते हैं, का भी रोपण किया जा रहा है। सेब की डिलीशियस किस्मों में वांस डिलीशियस, टॉप रेड तथा स्पर किस्मों में रेड चीफ, ओरिगान स्पर, सिल्वर स्पर तथा गोल्डन स्पर (परागक) प्रमुख हैं। सेब की इन किस्मों के रोपण का प्रचलन अब बहुत अधिक बढ़ रहा है। इन पौधों की विशेषता यह है कि ये मध्यम आकार के होते हैं, रंग ज़्यादा अच्छा आता है तथा फल देने की अधिक क्षमता होती है। इस प्रकार भविष्य में मुझे आशा ही नहीं अपितु विश्वास भी है कि घाटी में बदलते वातावरण को मद्देनज़र रखते हुए लाहुल के समस्त किसान/बागवान फल पौधों तथा हॉप्स की बागवानी को बढ़ावा देने के लिए प्रेरित होंगे तथा घाटी में अवश्य ही एक दिन औद्यानिक क्रांति आएगी, जिससे किसानों एवं बागवानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी।

कार्यालय उपायुक्त लाहुल एवं स्पीति

राष्ट्रीय बचत योजनाएं – एक नज़र

क्र.सं.	*योजना का नाम*	*ब्याज दर*
1.	किसान विकास पत्र	8 वर्ष 7 माह में दुगना
2.	डाकघर बचत खाता	डाकघर बचत खाता 3.5% ब्याज
3.	डाकघर मासिक आय योजना	डाकघर मासिक आय योजना 8% वार्षिक ब्याज
4.	सेवा निवृत्त होने वाले कर्मचारियों की जमा योजना	1989 8.5% ब्याज छमाही
5.	15 वर्षीय लोक भविष्य निधि खाता	9.5% चक्रवृद्धि ब्याज वार्षिक आयकर में राहत

लघु बचत ईनामी योजना 2002–03

1. *पहला पुरस्कार* — **टाटा सूमो**
2. *दूसरा पुरस्कार* — **मारुती कार 800 सी.सी. व विभिन्न प्रकार के 2089 ईनाम** इस योजना के अंतर्गत वितरित किए जाएंगे। जो भी जमाकर्ता मु. 5000/- एक मुश्त जमा करेगा उसे एक लक्की कूपन प्रदान किया जाएगा। अत: इस योजना में अधिक से अधिक धन जमा करवाकर अपने भाग्य को आज़माएं।

शुभ कामनाओं सहित

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

1. उपायुक्त कार्यालय एवं लघुबचत अभिकर्ता से।
2. नज़दीकी डाकघर से।

ज़िला बचत अधिकारी,
लाहुल, स्थान केलंग।

उपायुक्त एवं अध्यक्ष,
लघु बचत संगठन
ज़िला 2लाहुल एवं स्पीति, केलंग।

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा नमन, कुल्लू से टाईप सेटिंग तथा मुद्रित एवं (नीरामाटी) कुल्लू, से (हि०प्र०) से प्रकाशित। संपादक सुश्री छिमे शाशनी।